हर कदम, हर डगर
किसानों का हमसफर
भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद

Agrisearch with a human touch

प्लास्टिक हटाओ
धरती बचाओ

कोरोना को गुड बाय कहें
हाथ न मिलायें
नमस्ते कहें

भाकृअनुप - केन्द्रीय भेड़ एवं ऊन अनुसंधान संस्थान, अविकानगर
दूरभाष : 91-1437-225212, 220162, फैक्स : 91-1437-220163
ईमेल : cswriavikanagar@yahoo.com, वेब साईट : http://www.cswri.res.in

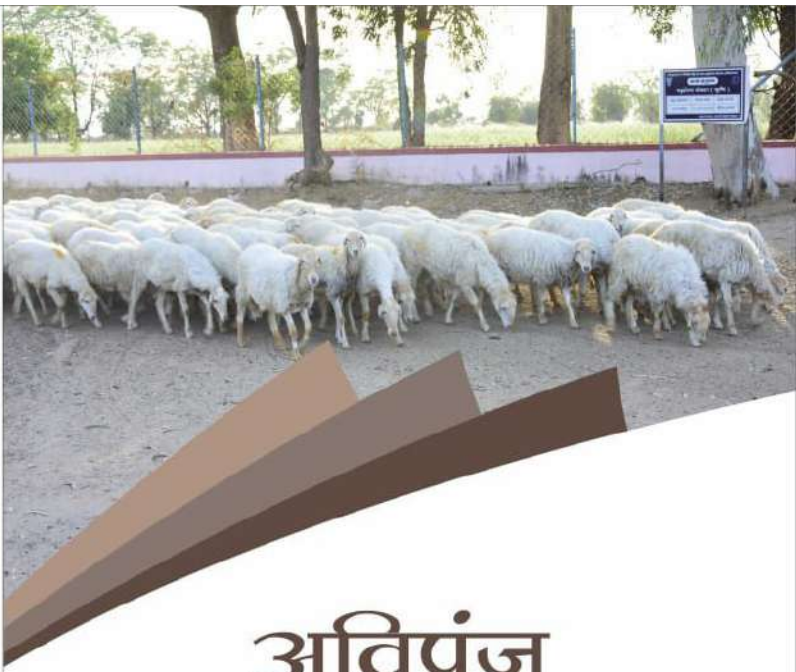

अविपुंज
2019

भाकृअनुप - केन्द्रीय भेड़ एवं ऊन अनुसंधान संस्थान
अविकानगर (वाया-जयपुर) राजस्थान-304501

हिंदी पखवाड़ा उद्घाटन समारोह 2019

भाकृअनुप - पश्चिम क्षेत्रीय खेलकूद आयोजन 2019

हिंदी पखवाड़ा उद्घाटन समारोह 2019

उत्तरी शीतोष्ण क्षेत्रीय केन्द्र, गड़सा में राजभाषा कार्यशाला का आयोजन

अविपुंज

हिन्दी पत्रिका

तेरहवां खण्ड

2019

भाकृअनुप – केन्द्रीय भेड़ एवं ऊन अनुसंधान संस्थान
अविकानगर (वाया–जयपुर) राजस्थान–304501

संरक्षक एवं प्रकाशक
डॉ. राघवेन्द्र सिंह, निदेशक

प्रधान संपादक
डॉ. डी.बी. शाक्यवार, प्रधान वैज्ञानिक

संपादक
श्री नवीन कुमार यादव, सहायक निदेशक (रा भा)

संपादक मण्डल
डॉ. एस.के. सांख्यान, प्रधान वैज्ञानिक
डॉ. रमेश चंद शर्मा, प्रधान वैज्ञानिक
डॉ. सुरेश चन्द्र शर्मा, प्रधान वैज्ञानिक
डॉ. जी.जी. सोनावणे, प्रधान वैज्ञानिक
डॉ. विजय कुमार, वरिष्ठ वैज्ञानिक
श्री सुरेश कुमार, मुख्य प्रशासनिक अधिकारी

सहायक संपादक
श्री जे.पी. मीना, स.मु.त.अ. (हिंदी अनु0)

संपर्क सूत्र
प्रभारी, राजभाषा प्रकोष्ठ

–: केवल विभागीय उपयोग हेतु :–

नोट : पत्रिका में प्रकाशित रचनाओं में व्यक्त विचार लेखकों के निजी हैं, संस्थान अथवा संपादक मंडल का उनसे सहमत होना आवश्यक नहीं।

निदेशक की कलम से ...

संस्थान की राजभाषा पत्रिका 'अविपुंज' का तेरहवां अंक प्रस्तुत करते हुये मुझे अत्यन्त प्रसन्नता हो रही है। मुझे आशा ही नहीं अपितु पूर्ण विश्वास है कि विगत अंकों की भांति यह पत्रिका सुधी पाठकों को रोचक, आकर्षक एवं ज्ञानवर्धक लगेगी।

संस्थान पशुपालकों एवं कृषकों से जुड़ा होने के कारण हमारा उत्तरदायित्व बनता है कि आम जन को उनकी ही भाषा में शोध संबंधी जानकारी उपलब्ध करवायी जाये। संस्थान के वैज्ञानिकों के शोध सार को पशुपालकों तक सरल एवं सहज हिन्दी में पहुँचाने से ही शोध का उद्देश्य पूरा हो पायेगा।

इस अवसर पर मैं हमारे सभी अनुसंधानकर्त्ताओं और लेखकों से अनुरोध करता हूँ कि अधिकाधिक प्रकाशन सामग्री राजभाषा हिन्दी में ही प्रकाशित करायी जाये। अविपुंज में शामिल अधिकांश लेख पशुपालकों के लिये बहुत ही उपयोगी जानकारी उपलब्ध करवाते हैं।

संस्थान में कार्यरत अधिकारियों/कर्मचारियों को इस पत्रिका के माध्यम से अपने विशय से संबंधित ज्ञान–विज्ञान एवं विचार अभिव्यक्ति करने का अवसर प्राप्त होता है। मैं अविपुंज के संपादक मंडल तथा लेखकों को उनके अथक प्रयास के लिये बधाई देता हूँ।

अविपुंज की निरन्तरता की कामना के साथ...

(डॉ. राघवेन्द्र सिंह)

प्राक्कथन

अविपुंज प्रथम अंक से अब तक अपने नाम को सार्थक करती आ रही है। अविपुंज भेड़ के लिए विकसित तकनीकियों एवं उत्पादों के प्रसार में अग्रणी भूमिका निभा रही है। अविपुंज के सभी अंकों में पशुपालकों के लिए अत्यधिक महत्वपूर्ण उपयोगी एवं रोचक जानकारी सरल एवं सहज हिंदी भाषा में उपलब्ध कराने का अच्छा साधन सिद्ध हुयी है। मेरा पूरा विश्वास है कि अविपुंज भेड़ एवं ऊन विषय पर अपेक्षित जानकारी आमजन तक पहुँचाने में सफलता हासिल करेगी।

मैं संस्थान के सभी वैज्ञानिकगण, तकनीकी एवं प्रशासनिक अधिकारी–कर्मचारीगणों से आव्हान् करता हूँ कि आगामी अंक हेतु अधिकाधिक आलेख भिजवायें ताकि हमारी पत्रिका उच्च स्तरीय एवं देश के वैज्ञानिक साहित्य में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त कर सकें।

अविपुंज के समस्त सम्पादक मंडल व लेखकों को सधन्यवाद ज्ञापन के साथ आशा करता हूँ कि अविपुंज का सतत् रूप से प्रकाशन होता रहे तथा यह पत्रिका अपने उद्देश्य को सार्थक करती रहे इन्हीं शुभकामनाओं के साथ..

(डॉ. डी.बी. शाक्यवार)

संपादकीय

हिन्दी एक सशक्त एवं स्वतंत्र भाषा है। प्रौद्योगिकी से हिन्दी को जोड़ने की आवश्यकता है। भारत सरकार के राजभाषा विभाग ने हिन्दी के प्रचार–प्रसार के लिये बहुत अधिक प्रयास किये हैं जिसमें नीति–नियमों के निर्माण के साथ–साथ विभिन्न ई–टूल्स यथा लीला हिन्दी प्रवाह, कंठस्थ, मशीन अनुवाद, श्रुतलेखन–राजभाषा, प्रवाचक–राजभाषा, ई–महा शब्द कोश आदि का निर्माण करना शामिल है। इस बात की आवश्यकता है कि प्रयोगकर्त्ताओं तक इन विभिन्न टूल्स के बारे में जानकारी पहुँचायी जाये।

किन्तु हिन्दी को अनुवाद की नहीं अपितु संवाद की भाषा बनाने की आवश्यकता है। कोई भी विभागीय पत्रिका विभाग में जारी कार्यकलापों का प्रतिबिंब होती है। यह भी उल्लेखनीय है कि सिनेमा और बाजार ने हिन्दी के विकास और प्रसार में अत्यधिक योगदान दिया है।

हम पत्रिका प्रकाशन के लिये संस्थान के निदेशक (का.) डॉ. राघवेन्द्र सिंह के विशेष आभारी हैं जिन्होंने अविपुंज के प्रकाशन के लिये हमें प्रोत्साहित किया। इस पत्रिका के प्रकाशन के लिये प्रधान संपादक, संपादक मंडल के सभी सदस्यों तथा उन सभी अधिकारियों / कर्मचारियों के प्रति आभार व्यक्त करते हैं जिनका पत्रिका को उत्कृष्ट, रोचक एवं पठनीय बनाने में योगदान रहा है।

अविपुंज के आगामी अंक को रोचक बनाने में आप सभी का सहयोग पूर्ववत मिलता रहेगा।

इसी विश्वास के साथ...

(नवीन कुमार यादव)

अनुक्रमणिका

क्र.स.	विषय	पेज नं.
1.	भेड़ के दूध के गुणधर्म एवं मानव स्वास्थ्य में उपयोगिता **राघवेन्द्र सिंह, अर्पिता महापात्र**	8
2	बकरी के नस्ल सुधार में पॉलीमरेज चेन रिएक्शन–सिंगल स्ट्रैंड कंनफॉरमेशन पॉलिमॉर्फिज्म आण्विक चिन्हक का महत्व अमर सिंह मीना, राजीव कुमार, एस. एस. मिश्रा, अरूण कुमार, ध्रुव मालाकार एवं एस. डे	10
3	भेड़ व बकरियों को 'लू' लगने से बचाने हेतु उचित प्रबंधन एवं देखभाल इन्दु देवी, एस.एस. मिश्रा एवं अरुण कुमार	12
4	भेड़ों में परिपक्वता / जनन क्षमता को बढ़ाने के लिए शतावरी एक औषधीय पौधा। एक अनूठा प्रयोग सुरेन्द्र कुमार सांख्यान, रणधीर सिंह भट्ट, महेश चन्द मीना, अनूप कुमार सिंह एवं आर्तबन्धु साहू	16
5	हरा चारा, पशु स्वास्थ्य एवं उत्पादन सुरेश चन्द्र शर्मा, एल.आर. गुर्जर, बनवारी लाल, ए. साहू एवं आर पी चतुर्वेदी	18
6	शुष्क एवं अर्धशुष्क क्षेत्रों में भेड़–बकरियों को ऊँट कटेंला की खिलाई–पिलाई रणधीर सिंह भट्ट, महेश चन्द मीना, सुरेन्द्र कुमार सांख्यान एवं आर्तबन्धु साहू	24
7	कृषि एवं पशुपालन प्रबंधन में महिलाओं का योगदान सुरेश चन्द्र शर्मा, एल.आर. गुर्जर, रंगलाल मीणा एवं आर.बी. शर्मा	29
8	बदलते आर्थिक एवं सामाजिक ग्रामीण परिवेश में : भेड़ पालन एल.आर. गुर्जर, राजकुमार, रंगलाल मीणा एवं एस.सी. शर्मा	33
9	थार मरुस्थल में खेजड़ी (प्रोसोपिस सिनेरेरिया) लगाकर किसान खेती के साथ–साथ पशुपालन कर आय बढ़ाएं बी. लाल, आर. एल. मीणा, एस. सी. शर्मा, प्रियंका गौतम, एल.आर. गुर्जर, महेश चन्द मीणा, आर.पी. चतुर्वेदी, हरी सिंह मीणा, आर्तबंधु साहू	35
10	भेड़–बकरी पालन आधारित समन्वित कृषि प्रणाली एल.आर. गुर्जर, रंगलाल मीणा, बनवारी लाल एवं एस.सी. शर्मा	40
11	बकरी के दूध की रासायनिक संरचना, पोषण एवं औषधीयगुण अमर सिंह मीना, राजीव कुमार, एस. एस. मिश्रा, अरूण कुमार, ध्रुव मालाकार एवं एस. डे	42
12	वस्त्रों में प्राकृतिक रंगों का महत्व सीको जोस, लता सामन्त एवं डी.बी. शाक्यवार	45

अनुक्रमणिका

क्र.स.	विषय	पेज नं.
13	सामुदायिक चरागाह भूमि, विकास एवं प्रबन्धन आर.पी. चतुर्वेदी, डॉ. सुरेश चन्द्र शर्मा, रंगलाल मीणा, बनवारी लाल एवं आर्तबन्धू साहू	48
14	वर्तमान में देश के चरागाहों की स्थिति, समस्यायें एवं समाधान आर.पी. चतुर्वेदी, सुरेश चन्द्र शर्मा, रमेश बाबू शर्मा एवं आर्तबन्धू साहू	52
15	शुष्क एवं अर्ध–शुष्क क्षेत्रों में तितली मटर चरागाह विकास हेतु एक उत्तम विकल्प रंगलाल मीणा, एस.सी. शर्मा, ए. साहू, बी. लाल, एल.आर. गुर्जर, राजकुमार, आर.पी. चतुर्वेदी एवं एच.एस. मीणा	55
16	राजस्थान में कैसे बढ़ाएं चारा जई की उत्पादकता हरिसिंह मीणा, आर.पी. नागर, एस.एस. मीणा, बनवारी लाल एवं रंगलाल मीणा	59
17	फसल चक्र किसानों के लिए एक लाभकारी प्रणाली रमेश कुमार गियाड़, रामधन घसवा, राजकुमार एवं मीना चौधरी	62
18	बारानी (वर्षा निर्भर) क्षेत्रों में खेती से किसानों की आय बढ़ाने की उन्नत तकनीकें रामधन घसवा[1], मीना चौधरी[2], रमेश कुमार गियाड़ एवं राजकुमार	65
19	मृदा स्वास्थ्य पर फसल अवशेष जलाने के हानिकारक प्रभाव एवं उचित प्रबंधन मीना चौधरी[1], मनोज कुमार जाट[2],रामधन घसवा[3], रमेश कुमार गियाड़ एवं राजकुमार	69
20	हरी खाद मृदा के लिये वरदान रमेश कुमार गियाड़, रामधन घसवा एवं राजकुमार	72
21	वर्मीकम्पोस्ट बनाने एवं उपयोग करने में किसानों की समस्या एवं समाधान रतन लाल बैरवा, एल.आर. गुर्जर, एस.सी. शर्मा एवं पवन कुमार माहोर	75
22	कृषि एवं पशुपालन से सम्बन्धित पत्र एवं पत्रिकाएें राजकुमार, रंगलाल मीणा, बलवीर सिंह साहू, एल.आर. गुर्जर, रामधन घसवा एवं रमेश कुमार गियाड़	78
23	संस्थान में राजभाषा कार्यान्वयन संबंधी गतिविधियां नवीन कुमार यादव	81

भेड़ के दूध के गुणधर्म एवं मानव स्वास्थ्य में उपयोगिता

राघवेन्द्र सिंह, अर्पिता महापात्र

हमारे देश में हमेशा से ही दूध, दही की भरमार रही है। पुराने समय में जिनके घरों में पर्याप्त मात्रा में दूध, दही उपलब्ध होता था, उन्हें सम्पन्न परिवार माना जाता था। हमारी संस्कृति में भी दूध को अमूल्य माना जाता है। भगवान श्रीकृष्ण की लीलाओं में दूध, दही और मक्खन की रोचक कथाएँ बताई गई हैं। यह एकमात्र ऐसा आहार है, जो हमारे शरीर को पोषक तत्वों का एक अद्वितीय संतुलन प्रदान करता है। इसलिए दूध को आदर्श भोजन भी कहा जाता है। प्रकृति ने दूध को एक अलग ही महत्व दिया है। मां जब अपने बच्चे को जन्म देती है तो अगले छः महीने तक दूध से ही बच्चे का पालन–पोषण होता है। जब शरीर का विकास हो रहा होता है उस समय दूध ही शरीर की समस्त आवश्यकताओं की पूर्ति करता है। केवल नवजात बच्चे के लिए ही नहीं बल्कि बड़े, बूढ़े, व्यस्क और स्त्रियों के लिए भी दूध फायदेमन्द है। राष्ट्रीय डेयरी परिषद् के अनुसार इसमें नौ आवश्यक तत्व होते हैं। जिनमें कैल्शियम, प्रोटीन, पोटैशियम, फास्फोरस, विटामिन– बी1, बी3, बी12, ए और डी हैं। इसलिए दूध को सम्पूर्ण आहार भी कहा जाता है।

आमतौर पर भारत में गाय, भैंस और बकरी का दूध घरेलू उपयोग में लिया जाता है। लेकिन कुछ ऐसे इलाके भी हैं जहां भेड़ का दूध उपयोग में लिया जाता है। आज भारत दुग्ध उत्पादन में विश्व में प्रथम स्थान पर है। विश्व का 21 प्रतिशत दूध भारत से प्राप्त होता है,जो कि सिर्फ गाय, भैंस और बकरी से मिलता है। भेंड़ो की संख्या में भारत विश्व में तीसरे स्थान पर होने के बावजूद भारत के कुल दूध उत्पादन में भेड़ों का न के बराबर योगदान है। हमारे देश के लगभग 15 प्रतिशत ग्रामीण घरों में भेड़ पालन किया जाता है, जिनमें से ज्यादातर लोग आर्थिक रुप से कमजोर, छोटे और सीमान्त किसान हैं। वे भेड़ का केवल मांस और ऊन के लिए ही उपयोग करते हैं। भेड़ का दूध पोषक तत्वों का भण्डार है। गाय और भैंस के दूध से तुलना करें तो इसकी श्रेष्ठता पता चलती है। भारत के पास पर्याप्त भेड़ संसाधन हैं जिनकों अगर उचित ढंग से इस्तेमाल किया जाये ंतो कृषक की आर्थिक स्थिति में सुधार दिखाई देगा।

भेड़ के दूध की विशेषताऐं

भेड़ मानव जाति के लिए प्रिय जानवरों में से एक है। भेड़ के दूध में एक मीठा और रुचिकर स्वाद होता है। पोषक तत्वों को देखें तो यह एक सम्पूर्ण आहार है। दूसरे दुधारु जानवरों की तुलना में भेड़ का दूध दो से तीन गुना अधिक ऊर्जा देता है। इसीलिए खिलाड़ियों और धावकों जिनकों तत्काल ऊर्जा की जरुरत होती है उनके लिए भेड़ का दूध बहुत उपयोगी है। वसा की मात्रा भी गाय व बकरी से दुगुनी होती है। साधारणतः वसा दो प्रकार की होती हैः लाभदायक तथा हानिकारक। वसीय अम्लों का आकार अगर छोटा या मध्यम हो तो यह आसानी से हजम हो जाते हैं और अगर इनका आकार बड़ा हो तो पाचन में समय लगाते हैं। वही वसा शरीर में एकत्रित होने लगती है और विभिन्न रोगों का कारण बनती है। भेड़ के दूध में छोटे और मध्यम श्रृंखला वाली वसा ज्यादा होती है और वसा की गोलिकाएं भी छोटे आकार की होती हैं। इस कारण भेड़ के दूध में उपलब्ध वसा लाभकारी होती है। प्रोटीन भी दूसरे जानवरों से ज्यादा मात्रा में मिलता है जो कि शरीर के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। यह प्रोटीन जब हमारे शरीर के पाचक तत्वों द्वारा छोटे टुकडों में विभाजित हो जाता है तो वह पैप्टाईड कहलाते हैं। भेड़ के दूध से जो पैप्टाईड बनते हैं वे विभिन्न रोगों की रोकथाम में मदद करते हैं। इसके अतिरिक्त भेड़ के दूध में कैल्शियम, आयरन, मैंग्नेशियम, जिंक तथा विटामिन बी1, बी2, बी6, बी12, सी, डी एवं ई प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होते हैं जो कि विभिन्न शरीर क्रिया में मदद करते हैं।

भेड़ बहुत कम दूध देती है। एक भेड़ से प्रतिदिन 500 से 600 मिलीलीटर दूध मिलता है। लेकिन भेड़ हमेशा समूह में रहती है। एक किसान के पास 50 से ज्यादा भेड़ होती हैं। एक साथ अगर 10 भेड़ें दूध दे रही हैं तो किसान को 5 से 6 लीटर तक दूध प्रतिदिन मिल जाता है। विदेशों में भेड़ के दूध को ज्यादा देर तक संरक्षित रख कर, उसे विभिन्न उत्पादों में परिवर्तित करके पोषक तत्वों को इस्तेमाल में लिया जाता है। विश्व प्रसिद्ध रोकियेफोट, फैटा चीज और योर्गट या दही भेड़ के दूध से बनते हैं।

मानव स्वास्थ्य में उपयोगिता

भेड़ के दूध के अनेक औषधीय गुण हैं। इसमें विटामिन ए, ई और जिंक पर्याप्त मात्रा में होने के कारण यह असाध्य चर्म रोग जैसे एग्जीमा और सोरायसिस में इस्तेमाल होता है। कंजुगेटेड लिनोलेइक एसिड की मौजूदगी के कारण यह ब्लड प्रेशर, मोटापा, हार्टअटैक जैसी समस्याओं को कम कर देती है। ज्यादा मात्रा में उपलब्ध विटामिन ई के कारण इसका इस्तेमाल सौन्दर्य उत्पादों जैसे लोशन और क्रीम आदि बनाने में प्रयोग होता है। प्रदूषण और फ्री रेडिकल्स से लड़कर यह त्वचा को स्वस्थ रखता है। भेड़ के दूध के अनगिनत फायदे हैं। भेड के दूध को प्रतिदिन पीने से शरीर में कोलेस्ट्रोल की मात्रा कम होती है, जोड़ मजबूत होते हैं, शरीर की प्रतिरक्षा प्रणाली सक्रिय होती है। अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में भेड़ के दूध की बहुत मांग है। मेडीटेरियन देशों जैसे स्पेन, ग्रीस, इटली आदि में भेड़ के दूध का ज्यादा प्रचलन है। जिस कारण वहाँ लोगो में हृदयघात की घटनाएँ बहुत कम पाई जाती हैं।

आधुनिक खानपान और जीवन शैली में आये परिवर्तन के कारण होने वाले बहुत से असाध्य रोगों के रोकथाम में भेड़ का दूध अहम भूमिका निभा सकता है। भारत के पास पर्याप्त भेड़ संसाधन हैं। भेड़ों का पालन आधुनिक तरीकों से करने पर किसानों को उत्तम आय प्राप्त होगी और उनकी आर्थिक स्थिति में सुधार दिखेगा।

बकरी के नस्ल सुधार में पॉलीमरेज चेन रिएक्शन-सिंगल स्ट्रैंड कंनफॉरमेशन पॉलिमॉर्फिज्म (पी सी आर-एस एस सी पी) आण्विक चिन्हक का महत्व

अमर सिंह मीना, राजीव कुमार, एस. एस. मिश्रा, अरूण कुमार, ध्रुव मालाकार एवं एस. डे

पशुधन की विभिन्न प्रजातियों जैसे भेड़, बकरी, गाय, भैंस आदि पशुओं में आर्थिक महत्व में अन्तर पाया जाता है। शरीर की वृद्धि, दूध उत्पादन, रोग प्रतिरोधक क्षमता, उत्तम जनन की दर एवं अन्य गुणों में पशुधन के हर पशु में अन्तर मिलता है। जबकि पोषण तथा वातावरण कारकों को नियंत्रित करने के बाद भी आर्थिक महत्व के लक्षणों में सदस्य दर सदस्य अन्तर मिलता है। अतः यह अन्तर पशुओं में जीनोमिक डीएनए की विविधता के कारण होता है। पशुधन के जीनोमिक डीएनए में पाई जानी वाली जैव– विविधता का पता लगाने के लिए जैव–प्रौद्योगिकी की अनेकों तकनीकों का उपयोग किया जाता है जिससे कि आर्थिक महत्व के लक्षणों के लाभदायक जीनोमिक डीएनए का चित्रण किया जा सके। इसके लिए विभिन्न प्रकार के आण्विक चिन्हकों का प्रयोग किया जाता है, जिसमें ज्यादातर आण्विक चिन्हक पीसीआर तकनीक पर आधारित हैं। जो कि जीनोमिक डीएनए के सूक्ष्म उत्परिवर्तन का आसानी से पता कर सकते हैं। ज्यादा पशुओं एवं अधिक मात्रा में डीएनए के क्षार–क्रम के बदलाव को पहचान के लिये पॉलीमरेज चेन रिएक्शन–सिंगल स्ट्रैंड कन्फॉरमेशन पॉलिमॉर्फिज्म (Polymerase Chain Reaction- Single Strand Conformation Polymorphism or PCR&SSCP) एक सरल तथा ज्यादा संवेदनशील आण्विक चिन्हक है। पीसीआर–एसएससीपी (PCR-SSCP) आण्विक चिन्हक से छोटे–छोटे जीनोमिक डीएनए के भागों पर उपस्थित एकल न्यूक्लियोटाइड बहुरूपता (SNP) को अनेकों पशुधन के सदस्य में जॉचा जा सकता है। पशुधन के सदस्यों में यह एकल न्यूक्लियोटाइड बदलाव उनके डीएनए में होने वाली क्रियाविधि तथा अन्य प्रेरक कारकों के कारण जमाव होता रहता है। यह बदलाव उत्परिर्वतन (Mutation) कहलाता है। जिसमें डीएनए के क्षार में बदलाव, विलोपित, जुडाव होता रहता है। यद्यपि इसकी दर बहुत कम होती हैं। यह धीरे–धीरे पशुधन की विभिन्न प्रजातियों में आर्थिक महत्व के गुणों में बदलाव करता है।

पीसीआर–एसएससीपी (PCR-SSCP) तकनीक का सिद्धान्त यह तकनीक पीसीआर पर आधारित आण्विक चिन्हक हैं। यह चिन्हक सह–प्रभाविता (Co-dominant) प्रकृति का होता है। जिसके परिणाम पुनरावर्तित (Reproducible) होते हैं। इस चिन्हक के माध्यम से किसी भी जीन में पाई जाने वाली एकल न्यूक्लियोटाइड बहुरूपता को चित्रित किया जा सकता है। किसी भी जीन में एकल न्युक्लियोटाइड बदलाव प्राकृतिक (Replication) में त्रुटि (Error) के कारण आती हैं और यह उत्परिवर्तन विभिन्न भौतिक (एक्सरे किरण, गामा किरण आदि) एवं रासायनिक कारकों से भी प्रेरित होता है। पशुधन के सदस्य की जीनों में एकल–न्यूक्लियोटाइड परिर्वतन लाभदायक या हानिकारक हो सकते हैं और ये बदलाव हमेशा जीन के कार्य को भी प्रभावित नहीं करते है। यदि यह बदलाव प्रोटीन बनाने वाली जीन में हो तथा उनके आने से जीन का कार्य प्रभावित होता है तो लाभदायक बदलाव प्रकृति के द्वारा पशुओं की संतति में चुन लिए जाते हैं। उदाहरण के लिए बकरी की विभिन्न नस्लों में के जीन जीनों में एकल न्युक्लियोटाइड बदलाव के कारण दूध में उपस्थित केजीन प्रोटीनों से दूध के तकनीकी गुण, पोषण गुण तथा छोटे–छोटे जैवक्रियाशील पेप्टाइड के उत्पन्न होने की दर प्रभावित होती है। यूरोप के कई देशों में बकरी के दूध की वसा तथा प्रोटीन की मात्रा के आधार पर बकरी के विभिन्न गुणों वाले दूध के लिए चयन किया जा रहा है। केजीन प्रोटीन्स की जीनों में लाभदायक बदलाव का पीसीआर–एसएससीपी आण्विक चिन्हक से चित्रण किया जा सकता है। इस प्रकार बकरी के दूध का अधिक मूल्य मिलने के कारण पालन को अधिक मुनाफे वाला बनाया जा सकता है।

पीसीआर –एसएससीपी तकनीक में वांछित डीएनए के भाग को पीसीआर प्राइमरों की सहायता से आवर्धित किया जाता है। आवर्धन होने या नहीं होने की जॉच ऐगरोस जैल– इलेक्ट्रोफोरेसिस पर की जाती है। तथा आवर्धित डीएनए के भाग में एकल न्यूक्लियोटाइड बहुरूपता पता करने के लिए पॉली ऐक्रिलामाइड जैल इलेक्टोफोरेसिस (PAGE) पर एक निश्चित प्रतिशत का ऐक्रिलामाइड जैल पर की जाती हैं। इसमें जैल निर्माण के लिए दो कॉच की प्लेटो के निचले किनारे को रबड़ की पैड से सील करके अर्ध्व (Vertical) चैम्बर बनाते हैं। जैल बनाने में सावधानी भी बरतनी चाहिए क्योकि ऐक्रिलामाइड जैल अविशालु (Toxic) होता है।

जैल बनाने में ऐक्रिलामाइड, बिस ऐक्रिलामाइड का अनुपात, ग्लिसराल, 10x टीबीई बफर, अमोनियम पैरासल्फेट (APS) टीमीड (TEMED) तथा जल का उपयोग किया जाता है। उपरोक्त अवयव की मात्रा तथा जैल प्रतिशतता से पीसीआर उत्पाद की एकल न्यूक्लियोटाइड बदलाव की जॉचने की क्षमता प्रभावित होती है। ऐक्रिलामाइड एवं विसऐक्रिलामाइड को एक निश्चित अनुपात से विभिन्न प्रतिशत (8–20%) का जैल बनाया जाता है। इस जैल का वर्टिकल जैल–इलेक्ट्रोफोरेसिस में फिक्स करके, 1–एक्स टीबीई बफर से भरा जाता है। जैल को एक घंटे सैम्पल को लोड करने से पहले चलाया जाता है। इसके बाद 3 माईक्रोलीटर आवर्धित उत्पाद एवं 15 माइक्रो–लीटर फोरमाइड डाई में मिश्रित करके $95^{0}c$ तापमान पर 5 मिनिट के लिए जीन के आवर्धित भाग का विगुणन (Denaturation) किया जाता है। उसके तुरन्त बाद सैम्पलों को बर्फ में ठण्डा किया जाता है। जिससे की एकल–रज्जुकी डीएनए अपनी न्यूक्लियोटाइड क्षार क्रम के आधार पर एक निश्चित आकार की 3 डी संरचना बनाता है प्रत्येक एकल–रज्जुकी डीएनए के भाग के क्षार क्रम के आधार पर भिन्न–भिन्न होती है। इन सैम्पलों को वर्टिकल जैल की वेल (Well) में 18 माइक्रोलीटर लोड किया जाता है तथा इसको $4^{0}C$ तापमान पर रेफ्रिजीरेटर में 50 वोल्ट विद्युत प्रवाह में 20–25 घंटों के लिए चलाया जाता है। इसके बाद विलगित (Separated) एकल–रज्जुकी संरचना को रजत अभिरंजन (Silver-Staining) से पहचाना जाता है। रजत अभिरंजन के 1–2 घंटे के प्रोटोकॉल से हर कदम करने के बाद डीएनए के बैंड दिखाई देते हैं। जिनको विशिष्ट बैन्डिग पैटर्न के आधार पर विभिन्न जीन प्रारूप में विभाजित किया जाता है। विभिन्न इलेक्ट्रोफोरेसिस गतिशीलता के कारण विकसित विशिष्ट बैन्डिग पैटर्न का वास्तविक पता लगाने के लिए इसके पीसीआर आवर्धित उत्पाद को सिक्वेंसिंग कराने के बाद एकल न्यूक्लियोटाइड बदलाव ज्ञात होता है। अतः यह तकनीक जीनोमिक डीएनए के भागों पर उपस्थित न्यूक्लियोटाइड विभिन्नताओं को पता करने के लिए एक सर्वोत्तम आण्विक चिन्हक हैं।

सारांश

पीसीआर–एसएससीपी आण्विक चिन्हक के उपयोग से डीएनए के किसी भी भाग पर उपस्थित अनेकों उत्परिपर्तन (म्यूटेशन) को बिना पीसीआर उत्पादों को प्रतिबंध एन्जाइम (Restriction enzyme) से पाचन से किया जा सकता है। इस चिन्हक के उपयोग से किसी भी जीन की आनुवांशिक बहुरूपता के लिए हर पीसीआर उत्पाद को सिक्वेसिंग करवाने की आवश्यकता नहीं हैं। इससे कम से कम नमूनों की सिक्वेंसिंग से ही पूरी पशुधन की प्रजाति की आबादी को जीन प्रारूप में बॉटा जा सकता हैं। इसे पशुधन के अध्ययन के लिए कम से कम लागत में प्रयोग किया जा सकता है। इस आण्विक चिन्हक के प्रयोग से विश्व की अनेक प्रयोगशालाओं में पशुधन के आर्थिक महत्व के गुणों का जीन की आनुवंशिक बहुरूपता के साथ संबंध स्थापित किया जा रहा है। आजकल यह आण्विक चिन्हक बैक्टीरिया, वायरस, पादपों तथा पशुओं के विभिन्न जीनोम के जीनों में उपस्थित उत्परिवर्तन का पता करने की महत्वपूर्ण विधि है।

चित्र :– 1 पॉलीऐक्रिलामाइड जैल– इलेक्ट्रोफोरेसिस उपकरण

चित्र :– 2 पीसीआर– एसएससीपी आण्विक चिन्हक से विकसित बैन्डिग पैटर्न 11% पॉलीऐक्रिलामाइड जैल पर रजत अभिरंजन के विकसित बीटा कैसिन जीन के एक्जान– 7 (29 से 31) के खण्ड का बैन्डिग पैटर्न सी एक धनात्मक कन्ट्रोल नमूने का बैन्डिग पैटर्न हैं।

भेड़ व बकरियों को 'लू' लगने से बचाने हेतु उचित प्रबंधन एवं देखभाल

इन्दु देवी, एस एस मिश्रा एवं अरूण कुमार

परिचय

जनसंख्या एवं बढ़ती जागरूकता व शहरीकरण के परिणामस्वरूप पशुधन उत्पादों की मांग में लगातार वृद्धि हो रही है। भेड़ें व बकरियाँ जो क्रमशः लगभग 9,500 और 10,000 साल पूर्व इंसान द्वारा पालतू बनाए गए थे वे मांस, दूध, खाल, ऊन एवं फाइबर के द्वारा भारत के पोषण और अर्थशास्त्र में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहीं है। भारतवर्ष में भेड़ों व बकरियाँ की क्रमशः 43 तथा 34 नस्लें हैं और इन पशुओं को अधिकतर पूर्णतया चरागाह पर ही पाला जाता है। इसलिए उन्हें किसी अन्य पशुधन प्रजातियों की तुलना में 'लू' लगने की स्थिति का अधिक सामना करना पड़ता है। इसलिए उनको 'लू' से बचाने व बदलते जलवायु परिदृश्य को देखते हुए भी 'लू' से होने वाले नुकसान व उसके प्रबंधन को समझना अति महत्वपूर्ण हो जाता है। भेड़ों के लिए ताप निरपेक्ष क्षेत्र या थर्मोन्यूट्रल जोन (वातावरण का तापमान क्षेत्र जब पशु को शरीर के रखरखाव के लिए किसी अतिरिक्त ऊर्जा की आवश्यकता नहीं होती है) 12–32 डिग्री सेंटीग्रेड के मध्य है जबकि बकरीयों के लिए यह 12–24 डिग्री सेंटीग्रेडहै। इस तापमान क्षेत्र के ऊपरी सीमा से अधिक तापमान होने पर पशुओ में 'लू' लगने की संभावना बढ़ जाती है तथा उत्पादन कम हो जाता है।

भेडों व बकरियों में लू लगने के सामान्य लक्षण

तेज गर्मी से बचाव प्रबंधन में जरा सी लापरवाही से पशु को 'लू' नामक रोग हो जाता है। भेडों व बकरियों में लू लगने के सबसे महत्वपूर्ण लक्षण शरीर के तापमान और श्वसन एवं नाड़ी दर में वृद्धि होना है। कभी–कभी नाक से खून भी बहने लगता है। भेडों व बकरियों में सामान्य शारीरिक तापमान 38.5–39.9 डिग्री सेंटीग्रेड है। सामान्य श्वसन व नाड़ी की गति दर क्रमशः 16–30 और 70–90 सांस प्रति मिनट है। श्वसन दर को देख कर लू लगने की गंभीरता का अनुमान लगाया जा सकता है, जैसे कम गंभीर– 40–60, मध्यम गंभीरः 60–80, उच्च गंभीरः 80–120, और अत्यंत गंभीरः 200 से ज्यादा। शारीरिक तापमान में 1 डिग्री सेंटीग्रेड की बढ़ोतरी से पशुओं का उत्पादन कम हो सकता है और यदि यह 41.7 डिग्री सेंटीग्रेड से अधिक हो जाता है तो पशु की मृत्यु तक भी हो सकती है (Marai et al., 2007)। इनके अलावा अन्य लक्षण जैसे पानी की टंकी या छाया के आसपास पशुओं की भीड़, भूख में कमी, हृदय गति में वृद्धि, गतिहीनता या लक्ष्यहीन भटकना, खुले मुंह से सांस लेना या झाग आना, कम पेशाब व शौच करना, दौरा आना, समन्वय की कमी, कंपकंपी और गंभीर तनाव में पशु गिर जाता है। 'लू' से ग्रस्त पशु को तेज बुखार हो जाता है और पशु सुस्त होकर खाना पीना बन्द कर देता है। पशु पालक के समय पर ध्यान नहीं देने से पशु की श्वसन गति धीरे–धीरे कम होने लगती है एवं पशु चक्कर खाकर बेहोशी की दशा में ही मर जाता है।

भेड़ें खुले मुँह से साँस लेते हुए

पशुओं के लिए तापमान तनाव का सबसे अधिक इस्तेमाल किया जाने वाला मॉडल टीएचआई है (Macías-Cruz et al., 2015)। टीएचआई थर्मल तनाव का एक महत्वपूर्ण संकेतक है जो परिवेश के तापमान और सापेक्ष आर्द्रता के प्रभाव के लिए जिम्मेदार है। भेड़ और बकरियों के लिए, टीएचआई (THI) की निम्नलिखित समीकरण का उपयोग करके गणना की जा सकती हैः $THI = Tdb - [(0.31 - 0.31\ RH)(Tdb - 14.4)]$ जहां Tdb शुष्क–बल्ब तापमान (℃) और RH सापेक्ष आर्द्रता है। जब टीएचआई की डिग्री सेल्सियस में गणना की जाती है, तो अगर टीएचआई 22.2 से कम या बराबर है तो छोटे रोमांथी पशुओं में कोई तनाव नहीं होता है जो थर्मोन्यूट्रल स्थितियों को दर्शाता है, अगर टीएचआई 22.2–23.3 के बीच में है तो यह सतर्क, हल्के से मध्यम तनाव को दर्शाता है, अगर टीएचआई 23.3–25.6 है तो यह मध्यम तनाव से गंभीर तनाव के लिए खतरा और अगर टीएचआई 25.6 से ज्यादा है तो यह आपातकालीन, अत्यधिक तनाव का संकेतक होता है।

भेडों व बकरियों में लू लगने के कारण होने वाले प्रभाव

1) चारे एवं पानी के सेवन पर प्रभाव

लू लगने के कारण आहार अंतग्रहण में कमी आ जाती है और इसके परिणामस्वरूप शरीर में पोषण की कमी हो जाती है। प्रथम अमाशय में भोजन पचने की दर कम हो जाती है (da Costa et al., 1992) व पेट की तरफ होने वाला रक्त प्रवाह भी कम हो जाता है (32 प्रतिशत मध्यम लू लगने पर और 76 प्रतिशत कमी गंभीर लू लगने पर), जिस कारण भोजन लंबे समय तक पेट में रहता है व भूख कम लगती है तथा भेड़ों में जुगाली करने की आवृति भी कम हो जाती है (Hirayama et al., 2000)। गर्मी के कारण चयापचय दर में भी कमी होती है तथा शारीरिक रखरखाव की आवश्यकताओं में 30 प्रतिशत तक की वृद्धि हो जाती है। पानी शरीर के तापमान, विकास, प्रजनन, दूध पाचन, पोषक तत्वों के आदान–प्रदान, रक्त में कोशिकाओं के परिवहन, अपशिष्ट उत्पादों का उत्सर्जन और शारीरिक गर्मी के संतुलन को बनाए रखने के लिए आवश्यक होता है। भेड़ों में झुंड के आकार के अनुसार पानी की आवश्यकता को ध्यान में रखा जाना चाहिए क्योंकि पानी की खपत सर्दियों के दौरान शरीर के कुल वजन का 9–11 प्रतिशत और गर्मियों के दौरान 19–25 प्रतिशत होती है (Khan and Ghosh, 1989) इसके अलावा, भेड़ें 10 से 15 डिग्री सेंटीग्रेड के बीच तापमान पर 2 किलो पानी/किग्रा ड्राई मैटर का उपभोग करती हैं, और यह अनुपात 20 डिग्री सेंटीग्रेड (Conrad, 1985) से ऊपर के तापमान पर तीन गुना बढ़ जाता है।

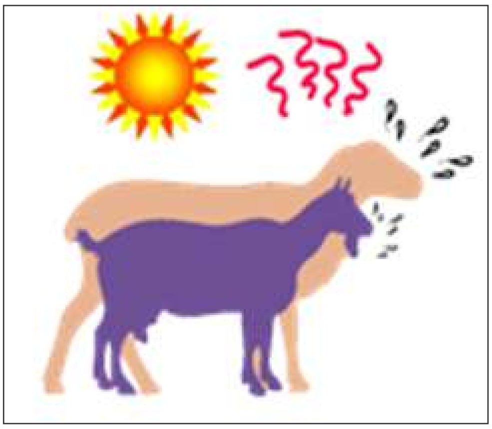

2) दुग्ध उत्पादन पर प्रभाव

गर्मी के कारण दूध की मात्रा और उसकी गुणवत्ता में कमी हो जाती है और दूध उत्पादन में होने वाली आधी कमी आहार में गिरावट होने के कारण होती है। डेयरी बकरियों में THI इंडेक्स वैल्यू में प्रत्येक यूनिट की वृद्धि होने से दूध की पैदावार में 1प्रतिशत तक की कमी पायी गई है जिसका कारण खून में ग्लूकोज की कमी होना है जिसको क्षणिक हाइपोगैलेक्टिया व जीर्ण हाइपोगैलेक्टिया में विभाजित किया गया है (Salama et al.,2014) गर्मियों में पसीने के माध्यम से प्रोटीन तथा यूरिया के स्राव में वृद्धि होने के कारण दूध में प्रोटीन भी कम हो जाता है।

3) प्रजनन क्षमता पर प्रभाव

गर्मी का प्रभाव गैर–स्तनपान कराने वाले जानवरों की तुलना में स्तनपान कराने वालों में अधिक होता है। दुग्धपान कराने से शरीर में अधिक मात्रा में गर्मी बनती है जिससे पशु के लिए शारीरिक तापमान को नियंत्रित करना मुश्किल हो जाता है जिसके कारण मादा में मद या गर्मी की अभिव्यक्ति भी कम हो जाती है। गर्मी से मादा में अंडाशय की कार्यप्रणाली तथा बच्चे के विकास को भी प्रभावित करती है जिसके परिणामस्वरूप उनकी प्रजनन क्षमता कम हो जाती है (Hansen, 2009)। ये प्रभाव मुख्य रूप से दो तंत्रों के कारण होते हैं, पहला प्रजनन अंगों का अधिक तापमान होना और दूसरा आहार के चयापचय से उत्पन्न गर्मी को कम करने के लिए आहार ग्रहण में कमी होना। गर्मी के कारण नर पशुओं में टेस्टोस्टेरोन के स्तर, शुक्राणुओं की गतिशीलता एवं उनके उत्पादन में कमी आ जाती है और असामान्य आकृति वाले शुक्राणुओं की संख्या में वृद्धि हो जाती है जो उनकी प्रजनन क्षमता और यौन इच्छा पर प्रतिकूल प्रभाव डालती है। वीर्य में ये बदलाव लू लगने के दो सप्ताह बाद प्रतीत होते हैं और लू का प्रभाव समाप्त होने के 6–10 सप्ताह बाद तक सामान्य नहीं हो पाते हैं (Gimenez and Rodning, 2007)। इसलिए प्रजनन कार्यक्रम के लिए योजना बनाते समय गर्मी के मौसम व उससे होने वाले इन प्रभावों को जान लेना चाहिए।

4) मांस की गुणवत्ता पर प्रभाव

गर्मी या लू लगने के कारण मांस की गुणवत्ता, शव तथा इंद्रिय ग्राही के लक्षण प्रभावित होते हैं। गर्मी से पीडित पशु का मांस एक प्रकार से गहरे रंग का शुष्क व ठोस प्रतीत होता है व उसमें ग्लाइकोजन कम मात्रा में पाई जाती है। उच्च तापमान पर वध करने वाले पशु में कम तापमान पर वध करने वाले की अपेक्षा कम प्रोटीन होता है, उसके रंग में कम चमक, कम लालिमा एवं पीलापन तथा वह कम रसीला होता है (Schaefer et al., 1997)। इनके अलावा बिना गर्मी से ग्रस्त बकरी की तुलना में गर्मी से ग्रस्त बकरी से प्राप्त मांस को पकाने के दौरान 7 प्रतिशत अधिक हानि होती है तथा शारीरिक अंगों में भी अधिक वजन रहता है, जैसे रक्त (264 ग्राम अधिक), पलक (203 ग्राम अधिक), हृदय (18 ग्राम अधिक), तिल्ली (23 ग्राम अधिक) और गुर्दे (23 ग्राम अधिक) होता है (Hashem et al., 2013)। इससे हमे मांस की गुणवत्ता पर होने वाला गर्मी का प्रभाव पता चलता है।

भेडों व बकरियों में लू लगने के तनाव को कम करने के तरीके

बकरियों और भेड़ों को गर्मी के तनाव से बचाने के लिए एक बहु–विषयक दृष्टिकोण की आवश्यकता होती है, जिसे मोटे तौर पर तीन श्रेणियों में वर्गीकृत किया जा सकता हैः पशु के भौतिक पर्यावरण का संशोधन या आवासीय व्यवस्था, पोषण प्रबंधन और उच्च तापमान के लिए अनुकूलित नस्लों का आनुवंशिक विकास। गर्मी के प्रभाव को कम करने के लिए जानवरों में कुछ अनुकूलन प्राकृतिक रूप से होते हैं, जैसेः

1) भेडों व बकरियों में शारीरिक अनुकूलन

भेड़ों व बकरियों की पूंछ में शरीर की ऊपरी वसा का अधिक जमाव होता है जो शरीर के बाकी हिस्सों से गर्मी के बेहतर निष्पादन में सहायक होता है। यदि छाया आदि उपलब्ध नहीं है तो पशु गर्मी के प्रभाव को कम करने के लिए अपनी मुद्रा को सूर्य की दिशा में सीधा कर लेता है। गर्मी में भेड़ें आहार को अधिक बार चबाती हैं और उनकी जुगाली करने का समय 76 प्रतिशत तक कम हो जाता है। हल्के रंग के जानवर गहरे रंग की तुलना में गर्मी को अधिक बेहतर ढंग से सहन करते हैं। हालांकि जानवरों में उपरोक्त अनुकूलन प्राकृतिक रूप से होते हैं, लेकिन भीषण गर्मी की स्थिति में पशुधन को सुरक्षित रखने के लिए विशेष प्रबन्धन एवं उपायों, जिनमें ठंडा एवं छायादार पशु आवास, स्वच्छ पीने का पानी आदि पर ध्यान दिये जाने की आवश्यकता है।

2) भेडों व बकरियों की आवासीय व्यवस्था का प्रबंधन

पूर्ण रूप से चारागाहों पर निर्भर पशुओं में सूर्य विकिरण के प्रभाव को कम करने के लिए छाया प्रदान करना सबसे आसान व सस्ता तरीका है क्योकिं छाया प्रदान करने से पशु के आसपास के वातावरण (माइक्रॉक्लाइमेट) में बदलाव होता है और पशु का गर्मी तनाव का अनुपात 30 से 50 प्रतिशत तक कम हो जाता है (Atrian and Shahryar,2012) और छाया वाले बाड़े में बिना छाया वाले जगह की तुलना में अधिकतम परिवेश तापमान और सापेक्ष आर्द्रता क्रमश 3.9–6.8 डिग्री सेल्सियस व 6.3–12.3 प्रतिशत कम हो जाता है (Sevi et al., 2001) जो की पशु के लिए आरामदायक वातावरण प्रदान करता है। पशुओं के खुले बाड़ों में, चराई क्षेत्रों में और पानी के टैंक के आसपास पेड़ और झाड़ियाँ लगाने चाहिए ताकि वो दिन के सबसे गर्म हिस्से के दौरान प्राकृतिक छाया प्रदान कर सके व पशु के आसपास का वातावरण भी ठंडा रहता है। पशु आवास में गर्म हवाओं का सीधा प्रवाह नहीं हो, इसके लिए लकड़ी के फंटे या बोरी के टाट को गीला कर दें, जिससे पशु आवास में ठण्डक बनी रहे। पशु आवास गृह में आवश्यकता से अधिक पशुओं को नहीं रखें तथा रात्रि में पशुओं को खुले स्थान पर छोड़ देना चाहिए। पशु के बाड़े की लंबी धुरी पूर्व–पश्चिम की दिशा में होनी चाहिए और सूर्य की विकिरण के असर को कम करने के लिए छत की ऊंचाई लगभग 10–12 फीट होनी चाहिए। पशु पालन की अर्ध व्यापक प्रणालि के तहत जहां जानवरों को अधिकांश दिन के समय में चराते हैं, यदि वहाँ संभव हो तो छाया की जंगम (पोर्टेबल) व्यवस्था की जा सकती है। गहन प्रणाली में जहां पशुओ को पूर्ण रूप से बाड़े में ही पाला जाता है, सूखी घास या कड़बी या पुआल के साथ शेड की छत को ढक कर रखें या फिर छत पर सफेद रंग की धातु की चदर रखें ताकि छत को गर्म होने से रोका जा सके। एक अध्ययन में पाया गया है कि शेड में पानी के पंखे (मिस्टर फैन जो की पानी की बहुत छोटी छोटी बूँद के साथ हवा देता है) टीएचआई को 3.8 यूनिट तक कम करने में सक्षम है जिसके कारण स्तनपान कराने वाली भेड़ों में श्वसन दर और शारीरिक तापमान में कमी आती है तथा पशु में चारे के सेवन में 8.4 प्रतिशत वृद्धि व दूध की उपज में 7.4 प्रतिशत वृद्धि होती है।

3) भेडों व बकरियों का पोषण प्रबंधन

जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है कि गर्मी के कारण आहार के सेवन में काफी कमी हो जाती है, इसलिए अधिक सांद्रता वाला आहार खिलाना चाहिए क्योंकि यह आसानी से पचता है और चयापचय के दौरान कम शारीरिक गर्मी उत्पन्न करता है। गर्मियों के दौरान, भेड़ व बकरियों को अच्छी गुणवत्ता वाला हरा चारा एवं दाना दिन की ठंडी अवधि के दौरान देना चाहिए क्योंकि यह उन्हें अपने सामान्य फीड सेवन को बनाए रखने के लिए प्रोत्साहित करता है और अधिक तापमान के तनाव से भी बचाता है, इसके अलावा, लगातार अंतराल पर खिलाना भी फायदेमंद होता है, जिससे रुमेन मेटाबॉलिज्म के उतार–चढ़ाव को कम किया जा सके। जानवरों को दिन के ठंडे समय के दौरान यानी सूर्योदय से पहले या भोर के समय चराने के लिए ले जाना चाहिए। आहार योगात्मक जैसे सोडियम बाइकार्बोनेट, नियासिन, एंटीऑक्सिडेंट्स, खमीर कल्चर, विटामिन सी और विटामिन ई इत्यादि भी फायदेमंद साबित होते है। बकरियों में 4 प्रतिशत अधिक तेल पिलाने के कारण शरीर के तापमान में कमी आती है और सोयाबीन का तेल गर्मी में दूध में वसा की मात्रा को बढ़ाता है (Salama et al., 2012)। इस मौसम में पशुओं को भूख कम व प्यास अधिक लगती है। इसके लिए गर्मी में पशुओं को स्वच्छ पानी आवश्यकतानुसार अथवा दिन में कम से कम तीन बार अवश्य पिलावें इससे पशु शरीर के तापमान को नियन्त्रित बनाये रखने में मदद मिलती है। यदि लू से प्रभावित बकरियों को दिन में 1 घंटे के लिए हवादार और शरीर पर हल्का पानी का छिड़काव कर रखा जाए तो वह 18 प्रतिशत अधिक आहार खाती है, 7 प्रतिशत अधिक पानी पीती हैं और 21 प्रतिशत अधिक दूध का उत्पादन करती हैं (Darcan and Güney, 2008)।

निष्कर्ष

आजकल बदलते जलवायु के कारण भेड़ और बकरी के उत्पादन को प्रभावित करने वाला प्रमुख तनाव हीट स्ट्रेस या लू लगना है। गर्म जलवायु के अनुकूल नस्लों के साथ–साथ, बेहतर पोषण व आवास प्रबंधन भी संयुक्त रूप से भेड़ व बकरियों का गर्मी के दौरान तनाव को कम करने का सबसे अच्छा तरीका है। गर्मी के मौसम से होने वाले नुकसान को कम करने के लिए पूर्ण सावधानी बरतनी चाहिए जिससे भेड़ व बकरी पालन से अधिक मुनाफा कमाया जा सके।

राजभाषा नियम, 1976 के नियम 5 के अनुसार हिन्दी में प्राप्त पत्रों का उत्तर हिन्दी में ही दिया जाना आवश्यक है।

भेड़ों में परिपक्वता/जनन क्षमता को बढ़ाने के लिए शतावरी एक औषधीय पौधा। एक अनूठा प्रयोग

सुरेन्द्र कुमार सांख्यान, रणधीर सिंह भट्ट, महेश चन्द मीना, अनूप कुमार सिंह एवं आर्तबन्धु साहू

शतावरी शुष्क एवं अर्धशुष्क क्षेत्रों में उगने वाला एक औषधीय आरोही पौधा है। यह सम्पूर्ण भारत में आरोही (climber) पौधे की तरह है जो जगंल के क्षेत्रों में पाई जाती है। कई किसानों के घरों और निजी खेतों में शतावरी के पौधे पाये जातें हैं। इस पौधे की जड़ अपने आप में अनेक औषधीय गुण लिए हुए है। इस पौधे पर सफेद रंग के खुशबुदार फूल और लाल रंग के बहुत छोटे फल लगते है। ये फल विषैलापन लिए होते हैं, इस पौधे की जड़ें औषधीय रूप में आयुर्वेद में प्रयोग में होती हैं जो मनुष्य एवं पशुओं की विभिन्न प्रकार की बीमारियों को रोकने एवं प्रजनन क्षमता तथा दूध स्राव को बढ़ानें में प्रयोग किया जाता है। इसे मादाओं के लिए मुख्य आयुर्वेदिक पुनर्योजी शक्तिर्वधक के रूप में इस्तेमाल करतें है। शतावरी की जड़ें शक्तिशाली उपापचय के रूप में सभी ऊतकों, मांसपेशियों एवं प्रजनन अगों पर जैविक दवा के रूप में और जीवन शक्ति को हासिल करने में मदद करती हैं। यह बहुत उपयोगी जड़ी–बूटी है।

मनुष्यों में शतावरी का प्रयोग एक औषधि के रूप में चिर काल से प्रचलित है। अगर इसके साहित्यिक अंशो को खोजे तो इसके मनुष्यों पर होने वाले प्रभावों को निम्न प्रकार से संकलित किया गया है।

- यह पित्तशामक औषधि वास्तव में मादाओं के लिए बहुत लाभदायक है यही नही नरों में भी इसके अनेक लाभ है, और यह एक टॉनिक होने के साथ –2 आतंरिक शोथ का शमन कर सभी विशिष्ट अगों (vital organs) को चिर काल तक स्वस्थ रखती है।
- इस औषधि के सेवन से यकृत (liver) पित्ताशय (gall bladder), पेट और अन्य अंगों की आतंरिक परन्तु उपशामक असर करता है इसलिए यह औषधि शोथ का निवारण करने में भी सक्षम है।
- विश्व के कई क्षेत्रों में इस औषधि का प्रयोग घाव की सफाई करने के लिए जाता है। शतावरी फेफड़ों (lungs) में जलन और इनमें दमा जैसी दिक्कत से आई तकलीफ के कारण आए शोथ को शांत करनें में भी सहायता करती है।
- यदि पित्त के बढनें से शरीर में खासकर रक्त या शरीर के रसों में यह तकलीफ उत्पन्न हुई हो तो शतावरी का प्रयोग अत्यंत सहायक है।
- यह तन्त्रिका तंत्र की नसों को भी आराम और पोषण प्रदान करती है तथा पशु शरीर में जकड़न, दर्द, इत्यादि एवं वातज विकृति से उन्पन्न समस्याओं को भी शतावरी के सेवन से लाभ मिलता है।
- शतावरी से ओजस का निर्माण भी होता है जो शरीर, को पूर्ण रूप से उर्जा प्रदान करती है। यह रोग प्रतिकारक क्षमता को बढ़ानें के लिए भी सहायक है। वास्तव में यह औषधि एक रसायन है जो शरीर को हर प्रकार से पुष्टि प्रदान करती है। यह बुखार को ठीक करने में भी समर्थ है।

पशुओं में कुछ अल्प कालिक प्रयोग किये गये हैं जिनमें यह पाया गया कि शतावरी से पशुओं में निम्न फायदे देखे गये हैं

- ये मादाओं में दूध की वृद्धि करती है। साथ ही गर्भाशय के स्वास्थ्य को सुधारने में तथा प्रजनन क्षमता बढ़ाने में सहायता करती है।
- यह नरों में भी रसों को बढानें में शतावरी सहायता करती है तथा इससे शुक्राणु की संख्या और शक्ति दोनों में वृद्धि पाई जाती है।

उपरोक्त तथ्यों को ध्यान में रखते हुये संस्थान में प्रायोगिक तौर पर कार्य किया गया कि यह पौधा जो हमारे संस्थान के जंगल में वर्षा ऋतु में बहुतायत में पाया जाता है और जिसे कुछ हद तक भेडें खाती भी हैं, उन पर इसका क्या प्रभाव देखा गया है। सबसे पहले इस पौधे को संस्थान के जंगल वाले इलाके से खोदकर लाया गया। उसके पश्चात उसे भली प्रकार से धोकर साफ किया गया और मशीन द्वारा सम्पूर्ण पौधे को पीसा गया और विभिन्न पोषक मानकों को प्रयोगशाला में जांचा गया जो इस प्रकार से निकला ।

शतावरी के जैविक कियाशील रासायनिक संघटक-

संघटक	प्रतिशत
शुष्क पदार्थ	6.8
प्रोटीन	2.95
कार्बोहाइड्रेट	52.89
क्रूड फाईबर	17.93
अकार्बनिक पदार्थ	4.18
आवश्यक तेल	5.00

खिलाने की विधि शतावरी के सम्पूर्ण पौधों को पीसकर तथा एक अनुपात में मक्के का आटा और एक अनुपात में चावल की छीलन मिलाकर मशीन द्वारा गोलियाँ बनाकर भेड़–बकरियों एवं पशुओं को 50 ग्राम प्रतिदिन प्रति जानवर के हिसाब से खिलाई जाती है।

परिणाम भेड़ों को शतावरी की गोलियाँ रातिब मिश्रण के साथ खिलानें से भेड़ों ने लगभग दो माह पूर्व में ही मद व्यक्त कर परिपक्वता को धारण किया और साथ ही यह भी देखा गया का जिन भेड़ों को शतावरी की गोलियाँ खिलाई गई वह सभी गाभिन हुई। सभी ने बच्चों को जन्म दिया। शतावरी की गोलिया खाने से भेड़ों की रूचि में कोई बदलाव नही देखा गया।

निष्कर्ष चराई के अतिरिक्त भेड़–बकरियों को शतावरी की गोलियाँ रातिब मिश्रण के साथ खिलानें पर वह जल्दी परिपक्ता को धारण करती है और वह मद व्यक्त करती है। शतावरी के अन्य औषधीय गुणों को देखते हुये इसकी गोलियाँ पूरक के रूप में खिलाने पर पशुओं को जल्दी परिपक्ता लाने के साथ –साथ उनको स्वस्थ रखने में उपयोगी साबित हो सकता है।

हिंदी भारत की राष्ट्रभाषा तो है ही, यही जनतंत्रात्मक भारत में राजभाषा भी होगीः सी. राजगोपालाचारी

हरा चारा, पशु स्वास्थ्य एवं उत्पादन

सुरेश चन्द्र शर्मा, एल.आर. गुर्जर, बनवारी लाल, ए. साहू एवं आर.पी. चतुर्वेदी

देश में हरे चारे की लगभग 45–55 प्रतिशत कमी है। केवल मानसून के मौसम में हरा चारा पशुओं के लिए पर्याप्त मात्रा में प्राप्त हो पाता है। शेष मौसम में पशुओं को फसल अवशेषों एवं भूसे आदि पर ही निर्भर रहना पड़ता है। इसके लिए हरा चारा वर्ष भर पशुओं को उचित मात्रा में मिलना सुनिश्चित करना, फसल चक्रों में उपस्थित फसलों द्वारा अधिकतम उत्पादन करना विशेष तौर पर महत्वपूर्ण है। पशुओं को उत्तम गुणवत्ता का हरा चारा खिलाने से पशु का दुग्ध उत्पादन बढ़ता है फलस्वरूप पशु लम्बे समय तक दुग्ध उत्पादन करता है, पशु समय से गर्भित होता है, पशु के दो ब्यांतों के बीच का अंतराल घटता है, पशु की प्रजनन शक्ति बढ़ती है, पशु की रोग प्रतिरोधक क्षमता आश्चर्यजनक रूप से बढ़ती है, नवजात बच्चों का भार बढ़ता है, नवजात बच्चों में मृत्यु दर घटती है।

हरा चारा सुपाच्य एवं रूचिकर होने के कारण पशुओं के लिए स्वास्थ्यवर्धक एवं उनके उत्पादन को बढ़ाने में सहायक होता है। स्वस्थ शरीर तथा गुणवत्ता युक्त अधिक उत्पादन के लिए कई तत्व आवश्यक हैं जो सूखे चारे में कम मात्रा में मिलते हैं तथा वह हरे चारे में ये प्रचुर मात्रा में प्राप्त हो जाते हैं। वर्तमान समय में अपने प्रदेश में दलहनी एवं गैर दलहनी दोनों प्रकार के चारे की फसलों की खेती की जाती है। यद्यपि दलहनी चारे में प्रोटीन की मात्रा अधिक होने के कारण वह अधिक पौष्टिक होते हैं परंतु फिर भी उन्हे भरपेट नहीं खिलाया जा सकता है। क्योंकि इन्हे भरपेट खिलाने से पशुओं के पेट में गैस भरने से आफरा (टिम्पानी) रोग होने की आशंका रहती है। दलहनी चारे के साथ गैर दलहनी हरा चारा या सूखा चारा मिलाकर खिलाने से आहार की पौष्टिकता बढ़ जाने के साथ–साथ आफरा इत्यादि होने की सम्भावना भी कम हो जाती है।

हरे चारे को पशुओं को खिलाने के तरीके

- **केवल एक हरा चारा का आहार** सिर्फ एक हरे चारे के रूप में पशुओं को बरसीम, रिजका, ग्वार, चौला खिलाया जाता है। हरी ज्वार व बाजरा चरी इत्यादि इन्हें अधिकतर खेत से काटकर कुट्टी करके पशुशाला में खिलाते हैं। इस विधि में इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि पशु इसे अधिक मात्रा में न खाये वरना उसे टैम्पानाइटिस (आफरा) होने की सम्भावना होती है।

- **दो या दो से अधिक चारों का मिश्रित आहार** इस विधि में दलहनी चारों को मिलाकर खिलाते हैं। दलहनी चारे (ग्वार, बरसीम, चौला, रिजका) में गैर दलहनी चारे (ज्वार/बाजरा चरी, नेपियर, गिनी घास इत्यादि) कुट्टी कर मिश्रित कर खिलाते हैं।

- **हरा चारा, भूसा और दाना, खली आदि का मिश्रण** हरा चारा गेहूं या जौ का भूसा, हरा चारा पयाल और इन मिश्रणों के साथ खली, चोकर आदि सबका मिश्रण करके खिलाते हैं जिससे पशु उत्पादन बढ़ाने हेतु सभी आवश्यक तत्व पर्याप्त मात्रा में मिल सके।

- **हरे चारे का साइलेज या 'हे'- बनाकर खिलाना** बहुतायत उत्पादन के समय हरी अवस्था में चारे को काटकर सुखा देने से 'हे' तैयार होता है। उसमें पोषक तत्वों की मात्रा अच्छी होती है। हरे चारे को कुट्टी कर मोलासेस का छिड़काव कर प्लास्टिक ड्रम अथवा गड्डों में दबा दिया जाता है। इस प्रकार 2 माह बाद साईलेज के रूप में भी पशुओं को गुणवत्तायुक्त चारा खिलाया जा सकता है। ये संरक्षित चारे हरे चारे की कमी के दिनों में पशुओं को खिलाने पर हरे चारे के प्रतिपूरक का कार्य करते हैं।

पौष्टिक हरे चारे की उपलब्धता बढ़ाने हेतु दलहनी व गैर दलहनी फसलों की किस्म एवं उनकी उत्पादन क्षमता बढ़ाने हेतु कृषि प्रक्रियाएं तालिका अ व ब में दर्शायी गयी है।

अः गैर दलहनी हरे चारे की खेती

विवरण	ज्वार	मक्का	बाजरा	हाईब्रिड नेपियर	जई
किस्में	एम.एस.जी.–988–898, पी.सी. 23 तथा एम.पी. चरी, एस.एस.जी. 59–3 ए, जे.सी. 69	अफ्रिकन टाल, जे 1006 एवं प्रताप चारा–6, संकर, गंगा–11 या कम्पोजिट मक्का, किसान, विजय	संकर बाजरा या कम्पोजिट बाजरा, तथा जाइन्ट बाजरा तथा राज 171, नरेन्द्र चारा बाजरा–2, एल–72 एल–74, राजको	पूसा जाईन्ट नेपियर, एन.बी.–5, एन.बी.–21, ई.बी.–4, गजराज, कोयम्बटूर एवं इगफ्री नेपियर।	केन्ट, यू.पी.ओ.–212, बुंदेल जई–822 (जे.एच.ओ.–822), बुंदेल जई–851 (जे.एच. ओ. 851)
बीज दर प्रति हैक्टेयर	30–40 किग्रा.	40–50 किग्रा.	एकल फसल के लिये 8–10 किग्रा. मिश्रित फसल में बाजरा तथा चौला 2:1 अनुपात में	जड़ (स्लिप्स) की संख्या 25000 से 30000 प्रति हैक्टर	छिटकवा विधि में 110–115 किग्रा, कूंडो में 25 सेमी दूरी पर 75–80 किग्रा.
बुवाई का समय	मार्च के द्वितीय सप्ताह से मार्च अन्त तक।	फरवरी के दूसरे पखवाड़े से,	मार्च के द्वितीय पक्ष से अप्रेल के प्रथम पक्ष तक।	वर्षा ऋतु प्रारम्भ होने पर अथवा मध्य फरवरी तक	अक्टूबर के प्रथम पखवाड़ा से नवम्बर के प्रथम पखवाड़ा तक
बुवाई का तरीका	छिड़काव अथवा 25–30 सेमी. की दूरी पर लाईनों में	लाईन की दूरी 20–30 सेमी.	छिड़काव अथवा 30–40 सेमी. दूरी पर लाइनों में	50–50 सेमी की दूरी 6 से 9 इंच गहरा गड्ढ़ा खोदकर	
खाद/उर्वरक की मात्रा प्रति हैक्टर	30 किग्रा. नत्रजन तथा 30 किग्रा. फास्फोरस बुवाई के समय। एक माह बाद 30 किग्रा. नत्रजन। प्रत्येक कटाई के बाद 30 किग्रा. नत्रजन	100 किग्रा. नत्रजन तथा 40 किग्रा. फास्फोरस । आधी नत्रजन बुवाई के समय तथा शेष बुवाई 25–30 दिन बाद	80 किग्रा. नत्रजन व 40 किग्रा. फास्फोरस। आधी नत्रजन बुवाई के समय तथा शेष बुवाई 25–30 दिन बाद	10 टन गोबर की खाद, 80 किग्रा फास्फोरस एवं 50 किग्रा नत्रजन प्रति कटाई	60 किग्रा. नत्रजन व 40 किग्रा. फास्फोरस अन्तिम जुताई के समय। 20 किग्रा. नत्रजन दो बार बुवाई के 20–25 दिन पर तथा पहली कटाई के बाद

सिंचाई	वर्षा होने से पूर्व हर 8–12 दिन बाद सिंचाई	आवश्यकतानुसार 12 से 15 दिन के अन्तर पर।	आवश्यकतानुसार फसल को 15–20 दिन के अन्तराल पर ।	पलेवा करके स्लिप्स लगायें फिर 3 दिन बाद सिंचाई करें। बाद में आवश्यकतानुसार ।	पलेवा करके खेत को तैयार करे। आगे की सिंचाईयां लगभग एक माह के अन्तर पर ।
कटाई	बुवाई के 50–60 दिन बाद। इसके बाद फसल हर 25–30 दिन पर।	50 प्रतिशत बाली आने से पहले लगभग 50–55 दिन पर ।	50 प्रतिशत बाली निकलने पर ।	पहली कटाई बोने के 70–80 दिन पर। बाद की कटाई 30–40 दिन के अन्तराल पर। वर्षभर में 6 से 8 कटाई ले सकते हैं।	पहली कटाई बोने के 50–55 दिन पर। दूसरी कटाई 50 प्रतिशत बाली निकलने पर।
हरा चारा पैदावार प्रति हैक्टेयर	300–400 क्विंटल	400–450 क्विंटल	400–500 क्विंटल	250–370 टन	50–55 टन

ब: दलहनी हरे चारे की खेती

विवरण	चौला	ग्वार	रिजका	बरसीम
किस्में	रशियन जाइंट, कोहिनूर, यू.पी.सी. 5286 तथा इग्फ्री 450, बुन्देललोबिया–1, बुन्देललोबिया–2, यू.पी. सी.–4200, ई.सी.–4216	टाईप–2, एफ.एस.–277 एवं एच.एफ.जी.–119, एच.एफ.जी.–156, बुन्देल ग्वार–1 बुन्देल ग्वार–2	इग्फ्री 244, आनन्द–2, टाईप–8, एल.एल.–3, एल. एल–5, लुसर्न सीओ–1, अल्मादार–51	वरदान, मेस्कवी, बुंदेलखण्ड बरसीम–2, (जे.एच.बी.–146), बुंदेलखण्ड बरसीम–3(जे.एच.टी.बी. –146),
बीज दर प्रति हैक्टेयर	एकल फसल के लिये 30–40 किग्रा.। मिश्रित फसल के लिये 25–30 कि.ग्रा.	एकल फसल के लिये 40–45 किग्रा. । मिश्रित फसल हेतु 15–16 कि. ग्रा.	20–25 कि.ग्रा.	25–30 कि.ग्रा.
बुवाई का समय एवं तरीका	मार्च से अप्रैल तक। बीज की बुवाई लाईनों में 25–30 सेमी. की दूरी पर।	प्रथम मानसून के बाद जून या जुलाई। बुवाई छिटकवां विधि से परन्तु मिलवां खेती में 30 सेमी लाइनों में ।	अक्टूबर से मध्य नवम्बर के मध्य तक। 25 से 30 सेंमी के अन्तर पर लाईनों में ।	15 अक्टूबर से 15 नवम्बर तक। तैयार क्यारियों में 5 सेमी. गहरा पानी भरकर बीज छिड़क देते है। 24 घण्टें बाद जल निकाल दें।

खाद / उर्वरक की मात्रा प्रति हैक्टर	बुवाई के समय 20 किग्रा. नत्रजन तथा 40–60 किग्रा. फास्फोरस	15–20 किग्रा. नत्रजन तथा 40–45 किग्रा. फास्फोरस	20 से 25 टन गोबर या कम्पोष्ट खाद, 20 किग्रा. नाईट्रोजन तथा 80 किग्रा. फास्फोरस	20 किग्रा. नत्रजन तथा 80 किग्रा. फास्फोरस
सिंचाई	पहली सिंचाई बुवाई के 15 दिन बाद करना चाहिए, मार्च में बोने पर 4–5 सिंचाई पर्याप्त है।	प्रायः फसल को सिंचाई की आवश्यकता नहीं पड़ती है।	गर्मी के दिनों में 10 या 12 दिन के अन्तर से तथा सर्दी में 20 से 25 दिन के अन्तर पर।	पहली सिंचाई बीज अंकुरण के तुरन्त बाद। बाद में प्रत्येक सप्ताह के अन्तर पर 2–3 बार। इसके पश्चात फरवरी के अन्त तक 20 दिन के अन्तर पर। मार्च से मई तक 10 दिन के अन्तर पर।
कटाई	फली बनने पर कटाई करनी चाहिए। पहली 50–55 दिन पर। बाद की 30 दिन पर।	पुष्पावस्था (बुवाई के 2 माह बाद) या फली बनने की अवस्था पर।	पहली 55 से 60 दिन पर। बाद में 35 से 40 दिन के अन्तर पर।	पहली कटाई 45 दिन पर फिर 30–35 दिन के अन्तर पर
हरा चारा पैदावार प्रति हैक्टेयर	300–325 क्विंटल	150–225 क्विंटल	प्रति कटाई 400 से 500 क्विंटल	80–100 टन

पौष्टिक हरे चारे को पूरा करने के लिए प्रति इकाई क्षेत्र में चारे की पैदावार को बढ़ाना बहुत जरूरी है। इसके लिए फसल–चक्र अपनायें, जो इस प्रकार है–

फसल चक्र 1 चौला + बरसीम + जापानी सरसों + नेपियर संकर बाजरा

बुवाई का समय

(क) चौला अप्रैल से जून तक (ख) बरसीम अक्तूबर (ग) नेपियर संकर बाजरा फरवरी

बीज की मात्रा

(क) चौला 16 किग्रा. (ख) बरसीम 10.5 किग्रा. (ग) नेपियर संकर बाजरा की जड़ों को 150X70 से.मी. पर रोपें

खाद (किलोग्राम प्रति एकड़)

(क) चौला 12 किग्रा. फास्फोरस 8 किग्रा. नाइट्रोजन (ख) बरसीम 32 किग्रा. फास्फोरस 8 किग्रा. नाइट्रोजन

(ग) नेपियर संकर बाजरा प्रथम कटाई के समय 30 किग्रा. व अन्य हर कटाई पर 20 किग्रा. नाइट्रोजन दें।

चारा मिलने की अवधि

(क) चौला जून से सितम्बर (ख) बरसीम दिसम्बर से अप्रैल

(ग) नेपियर संकर बाजरा पहले वर्ष में जून से अक्तूबर व मार्च से अक्तूबर अगले वर्षों में पैदावार 720 से 800 क्विंटल प्रति एकड़

फसल चक्र 2 : रिजका + नेपियर संकर बाजरा

बुवाई का समय

(क) रिजका अक्तूबर–नवम्बर (ख) नेपियर संकर बाजरा फरवरी

बीज की मात्रा

(क) रिजका : 4 कि.ग्रा. (ख) नेपियर संकर बाजरा : जड़ों को 150 X 70 सैं.मी. की दूरी पर रोपें

खाद (किलोग्राम प्रति एकड़) : 32 कि.ग्रा. फास्फोरस 8 किग्रा. नाइट्रोजन

चारा मिलने की अवधि

(क) रिजका : फरवरी से सारा वर्ष (ख) नेपियर संकर बाजरा : जून से नवम्बर

पैदावार : 640 से 680 क्विंटल प्रति एकड़

5फसल चक्र 3 : बरसीम + जापानी सरसों - मीठी सुडान घास

बुवाई का समय

(क) बरसीम़ जापानी सरसों : अक्तूबर का पहला सप्ताह

(ख) मीठी सुडान घास : अप्रैल का आखिरी या मई का पहला सप्ताह

बीज की मात्रा

(क) बरसीम़ जापानी सरसों : 10 किलोग्राम (ख) मीठी सुडान घास : 12 किलोग्राम खाद (किलोग्राम प्रति एकड़) बरसीम़ जापानी सरसों : 32 किग्रा. फास्फोरस 8 किग्रा. नाइट्रोजन

मीठी सुडान घास : 40 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, अलग–अलग खुराकों में़ मिट्टी परीक्षणों के आधार पर फास्फोरस

चारा मिलने की अवधि

(क) बरसीम़ जापानी सरसों : दिसम्बर–अप्रैल

(ख) मीठी सुडान घास : जून–अक्तूबर

पैदावार : 580 से 660 क्विंटल प्रति एकड़

सारा साल हरा चारा प्राप्त करने के अन्य फसल चक्र

1. नेपियर बाजरा + संकर हाथी घास + चौला – बरसीम +़ सरसों।
2. मक्का +़ चौला, ज्वार +़ चौला, जई।
3. सुडान घास – बरसीम–़ सरसों।
4. ज्वार – बरसीम + सरसों।
5. ज्वार + ग्वार – जई – मक्का + चौला ।
6. बाजरा व रिजका।

हरा चारा खिलाने के कुछ दुष्प्रभाव पड़ने की सम्भावना होती है। अतः हरे चारे को खिलाने में निम्न बातों का भी ध्यान रखना आवश्यक है।

हाइड्रोसाइनीनविषाक्तता

ये विषाक्तता ज्वार एवं सुड़ान घास के हरे चारे में होती है। जब चारे की कटाई के बाद ताजा फूटान के समय सूखे की स्थिति रहती है तो साइनाइड नामक जहर का स्तर पौधे में बढ़ जाता है जिससे प्रुसिक ऐसीड विषाक्तता हो जाती है। इस तरह का चारा थोड़ा सा भी अधिक मात्रा में खाने पर पशु में सांस लेने में परेशानी होना, चक्कर आना/लड़खड़ाना, ऐंठन आना जैसे लक्षण दिखाई देते है और 2–3 घण्टे में पशु की मृत्यु भी हो सकती है।

नाईट्रेट विषाक्तता

पशु आमाशय में बैक्टेरिया द्वारा नाईट्रेट को नाइट्राइट में परिवर्तित किया जाता है। नाईट्रेट उतना विषाक्त नहीं है जितना नाइट्राइट होता है। जब अत्यधिक नाइट्रेट युक्त हरा चारा बैक्टेरिया की परिवर्तन क्षमता से ज्यादा पशु खा लेता है तो आमाशय में नाइट्रेट और नाइट्राइट दोनों का स्तर बढ़ जाता है जिसे आमाशय सोख लेता है और पशु में विषाक्तता हो जाती है जिससे पशु को सांस लेने में कठिनाई होती है, तेज सांस चलती है, जानवर कांपने लगता है और अन्ततोगत्वा मर भी सकता है।

मैं दुनिया की सभी भाषाओं की इज्जत करता हूं पर मेरे देश में हिंदी की इज्जत न हो, यह मैं सह नहीं सकता:
आचार्य विनोबा भावे

शुष्क एवं अर्धशुष्क क्षेत्रों में भेड़–बकरियों को ऊँट कटेंला की खिलाई–पिलाई

रणधीर सिंह भट्ट, महेश चन्द मीना, सुरेन्द्र कुमार सांख्यान एवं आर्तबन्धु साहू

हमारे देश में भेड़–बकरी पालन मुख्य रूप से मांस, दुग्ध एवं ऊन उत्पादन के लिए किया जाता है। देश में लगभग 657 लाख भेड़ें तथा 1260 लाख बकरियाँ हैं। प्रतिवर्श कुल भेड़–बकरियों की संख्या का लगभग 35 प्रतिशत का वध कर दिया जाता है जिससे हमें प्रतिवर्श 240 मिलियन किलोग्राम भेड़ों का मांस तथा 480 मिलियन किलोग्राम बकरियों का मांस प्राप्त होता है। भेड़ों से हमें प्रतिवर्श लगभग 50 मिलियन किलोग्राम ऊन तथा 60 मिलियन किलोग्राम दूध प्राप्त होता है जबकि बकरियों से 4410 मिलियन किलोग्राम दूध प्राप्त होता है। इसके अतिरिक्त हमें भेड़ों एवं बकरियों से खाल एवं मेंगनी के रूप में खाद भी प्राप्त होती है।

पारम्परिक रूप से भेड़–बकरी पालन आर्थिक रूप से कमजोर ग्रामीणों द्वारा किया जाता है। देश के शुष्क, अर्ध–शुष्क एवं शीतोश्णीय ग्रामीण क्षेत्रों में भेड़–बकरी पालन जीविकापार्जन का प्रमुख साधन है। इन क्षेत्रों में कठोर जलवायु एवं विषम परिस्थितियों में भेड़–बकरी पालन किसानों को रोजगार के साधन उपलब्ध कराता है। देश के अधिकांश क्षेत्रों में जहाँ प्रतिकूल कृषि जलवायु परिस्थितियों के कारण फसल उत्पादन प्रायः कठिन होता है, वहाँ भेड़–बकरी पालन अहम भूमिका निभाता है। हमारे देश में भेड़ों एवं बकरियों की आहार व्यवस्था सामान्यतया वन चरागाहों, बेकार पड़ी भूमि एवं परती भूमि पर उगी हुई वनस्पतियों तथा फसलों की कटाई के बाद बचे हुए अवशेषों पर निर्भर करती है। भेड़–बकरी उत्पादन में कुल लागत का 65 प्रतिशत व्यय इनके पोषण पर होने से भेड़–बकरी पालन में पोषण का अत्यन्त महत्व है। अधिकतर भेड़–बकरी पालक इनके पोषण की पारम्परिक तकनीकें अपनाते हैं जिससे प्रायः कम आमदनी होती है। यद्यपि भेड़–बकरी पालन एक लाभकारी व्यवसाय है तथापि इनके पोषण की समुचित तकनीकें अपनाकर लागत को कम करके अधिक लाभ कमाया जा सकता है। इसके साथ वर्षा के मौसम में हमारे देश में उगने वाली घासों से चारा उत्पादन आसान है।

ऊँट कटेंला की खेती कैसें करें

शुष्क एवं अर्धशुष्क क्षेत्रों में उगने वाला ऊँट कटेंला एक झाड़ीनुमा पौधा है जो प्रायः फरवरी से मई तक उपलब्ध होता हैं। यह एक हरे, सूखे एवं चारे के रूप में जगंल में मिलता है। कृषि हेतु अयोग्य बंजर भूमि से प्राप्त होता है। अकाल ग्रस्त क्षेत्रों में ऊँट कटेंला का प्रयोग पशुओं के भोज्य अवयव के रूप में किया जा सकता है। चारे की कमी के दौरान आपातकालीन परिस्थितियों में इसे चारे के रूप में भेड़–बकरियों एवं पशुओं को खिलाते हैं।

खिलाई की विधियाँ

ऊँट कटेंला की अच्छी तरह कुट्टी काट कर इसे कड़बी या घास के साथ मिलाकर पशुओं को खिलाना चाहिए। ऊँट कटेंला का उपयोग शुष्क एवं अर्धशुष्क क्षेत्रों और गर्म वातावरण के समय किया जाता है । यह एक सूखे एवं चारे के रूप में और कमी के दौरान आपातकालीन परिस्थितियों में इसे चारे के रूप में इस्तेमाल किया गया है। कृषि हेतु अयोग्य बंजर भूमि से प्रति हेक्टर लगभग 10 क्विंटल ऊँट कटेंला शुष्क पदार्थ के रूप में प्राप्त होती है।

ऊँट कटेंला से सम्पूर्ण आहार वट्टिका बनाने की विधि

सम्पूर्ण आहार वट्टिका बनाने में ऊँट कटेंला एवं रातिब मिश्रण का अनुपात पशुओं की शारीरिक अवस्थानुसार निर्धारित किया जाता है। सामान्यतः निर्वाह आहार के लिए बनाई गई संपूर्ण आहार वट्टिकाओं में ऊँट कटेंला चारा एवं रातिब मिश्रण का अनुपात लगभग 80:20 जबकि उत्पादन के लिए यह अनुपात 60:40 से 70:30 तक हो सकता है। चारों के लिए फसलों के उपोत्पाद जैसे गेंहूँ का भूसा, कड़बी, मूँगफली का चारा, मोठ चारा ग्वार भूसा, सरसों का भूसा, सूखी पत्तियाँ, विभिन्न प्रकार की घासों ऊँट कटेंला एंव चारों को ऊर्जा एवं रेशा के लिए तथा रातिब मिश्रण (दाना) को प्रोटीन एवं ऊर्जा के मुख्य स्रोत के रूप में प्रयोग करते है। पशुओं के लिए दाना बनाने के लिए प्रायः पाँच प्रकार के घटकों जैसे अनाज, खलियाँ, चोकर–चूरी, खनिज मिश्रण एवं नमक का प्रयोग किया जाता है। विभिन्न अनाजों ,खलियों व चोकर–चूरियों का चुनाव उनकी स्थानीय बाजार में उपलब्धता एवं कीमत के

आधार पर किया जाता है। रातिब मिश्रण में खनिज मिश्रण और नमक की मात्रा प्रायः निश्चित रहती है। मौटे तौर पर अन्य तीन घटकों जैसे अनाज, खलियाँ व चोकर–चूरी आदि, प्रत्येक को एक तिहाई मात्रा में प्रयोग किया जाता है। पशुओं के दाने में प्रायः प्रोटीन की मात्रा 17–18 प्रतिशत और कुल पाचक तत्वों की मात्रा 70–75 प्रतिशत रखी जाती है। दोनो प्रकार के स्रोतो (चारों में ऊँट कटेंला एंव रातिब मिश्रण) को विभिन्न अनुपात में मिलाकर भिन्न–भिन्न संघटनों की वट्टिकाएँ बनाई जा सकती हैं जो पशु की शारीरिक अवस्था के अनुसार पोषक तत्वों की आपूर्ति में सक्षम होती है। सम्पूर्ण आहार वटिट्का बनाने में 2 से 5 प्रतिशत शीरे का प्रयोग भी किया जाता है।

सम्पूर्ण आहार वट्टिकाओं का भंडारण जब शुष्क व अर्धशुष्क क्षेत्रों में किया जाता है तो दो वर्षों के बाद भी ये पशु उपयोग के लिए उपयुक्त रहती है। पॉलीथीन के आवरण या वायु रहित पॉलीथीन के बोरो में इनका भंडारण करने से इनको और भी अधिक समय तक सुरक्षित रखा जा सकता हैं। भंडारण के दौरान भंडारगृह को पानी आदि से बचाना आवश्यक है। सम्पूर्ण आहार वट्टिकाओं के उपभोग से पशुओं द्वारा आहार का अंतर्ग्रहण अधिक एवं रोमंथ में उसके पाचन व चयापचय की क्रियाएँ भलीभाँति सम्पन्न होती है जिसके फलस्वरूप पशु को अच्छा पोषण प्राप्त होता है। वर्धनशील पशुओं को जब इन सम्पूर्ण आहार वट्टिकाओं को खिलाया जाता है तो उनके देहभार में सामान्य से 29 से 48 प्रतिशत अधिक वृद्धि होती है। इसी प्रकार दुधारू पशुओं को सम्पूर्ण आहार वट्टिकाओं को खिलाने से उनका दुग्ध उत्पादन 23 से 34 प्रतिशत बढ़ जाता है। सम्पूर्ण आहार वट्टिकाओं में चारे के साथ पेड़ों की पत्तियों के समावेश करने से आहार में प्रोटीन का स्तर बढ़ जाता है। यह प्रभाव तब और अधिक होता है जब पत्तियों का प्रयोग मुख्यतः सरसों या किसी अन्य घटिया चारे के साथ किया जाता है।

लाभ

- उच्च दबाव के कारण चारा व दाना आपस में अच्छी प्रकार से मिल जाते हैं। फलस्वरूप पशु एक निश्चित अनुमान में ही चारे व दाने को खाता है। जिससे पशु के रोमंथ में इसका किण्डन समुचित होता है तथा उसे पोषक तत्वों की अधिक आपूर्ति होती हैं।
- ऊर्जा व प्रोटीन के तारतम्य के कारण पशु आहार की स्वादिष्टता व पाचकता में बढ़ोतरी होती है।
- पशुओं द्वारा चारे की न्यूनतम जूठन छोड़ी जाती है।
- तैयार की गई वट्टिकाएँ भूसे की अपेक्षा एक तिहाई स्थान ही घेरती हैं जिससे इनके भंडारण में आसानी होती है। तथा इनके परिवहन में भी सुविधा रहती है।
- यदि आवश्यक हो तो वटिट्का बनाने के दौरान रोगो से बचाव की दवाएँ भी मिलायी जा सकती हैं।
- सम्पूर्ण आहार की वट्टिकाओं का भंडारण बिना किसी दुष्प्रभाव के एक साल तक किया जा सकता है।
- ग्रामीण क्षेत्रों में पशु पालन का ज्यादातर कार्य महिलाओं द्वारा किया जाता है, इस तकनीक से उन पर कार्य का बोझ घट जाता है।
- इस तकनीक से सूखे चारों की प्रचुर मात्रा वाले स्थानों में वट्टिकाएँ बनाकर अकालग्रस्त या अभावग्रस्त क्षेत्रों में आसानी से पहुँचायी जा सकती हैं।

तालिका-1 ऊँट कटेंला (वानस्पातिक नाम-बलेफरिस सिडिका) का रासायनिक सघटन

सघटक	प्रतिशत
शुष्क पदार्थ	28.93
क्रूड प्रोटीन	7.71
एन.डी.एफ.	64.23
ए.डी.एफ.	41.02
लिग्निन	15.17
राख	5.69

ऊँट कटेंला से सम्पूर्ण आहार वट्टिका बनाने की विधि

सम्पूर्ण आहार वट्टिका बनाने में ऊँट कटेंला एवं रातिब मिश्रण का अनुपात पशुओं की शारीरिक अवस्थानुसार निर्धारित किया जाता है। तीन प्रकार की सम्पूर्ण आहार वट्टिका बनाकर परीक्षण किया सामान्यतः निर्वाह आहार के लिए बनाई गई संपूर्ण आहार वट्टिकाओं में ऊँट कटेंला चारा, रातिब मिश्रण एवं शीरा 5 प्रतिशत का अनुपात लगभग 60:35 जबकि उत्पादन के लिए यह अनुपात 30:65 से 45:55 तथा शीरा 5 प्रतिशत मिलाकर बनाया जाता है।

तालिका-2 ऊँट कटेंला से सम्पूर्ण आहार वट्टिका बनाने की विधि

खाद्य अवयव	सम्पूर्णआहार वट्टिका–1	सम्पूर्णआहार वट्टिका–2	सम्पूर्णआहार वट्टिका–3
रातिब मिश्रण	35		
चरा 60 प्रतिशत	–	–	–
सेन्क्रस हे	60	30	15
ऊँट कटेंला	–	30	45
शीरा	5	5	5
तकनीकी कार्यक्रम			
उपचार	**सम्पूर्णआहार वट्टिका–1**	**सम्पूर्णआहार वट्टिका–2**	**सम्पूर्णआहार वट्टिका–3**
व्यस्क भेड़ों की संख्या	12	12	12

इसमें तीन उपचार के लिए सम्पूर्ण आहार वटिट्का बनाई गई जिसमें प्रथम उपचार की सम्पूर्ण आहार वटिट्का –1 में रातिब मिश्रण, सेन्क्रस घास एवं शीरा द्वितीय उपचार की सम्पूर्ण आहार वटिट्का –2 में रातिब मिश्रण, सेन्क्रस घास,ऊँट कटेंला 30 प्रतिशत एवं शीरा तृतीय उपचार सम्पूर्ण आहार वटिट्का –3 रातिब मिश्रण, सेन्क्रस घास,ऊँट कटेंला 45 प्रतिशत एवं शीरा मिलाकर यह 60 दिनों तक उपचार किया जिसके दौरान खिलाई–पिलाई शारीरिक भार में वृद्वि रिकार्ड की गई।

तालिका-3 विभिन्न प्रकार की सम्पूर्ण आहार वट्टिकाओं का रसायनिक संयोजन

पोशक तत्व	सम्पूर्ण आहार वट्टिका–1	सम्पूर्ण आहार वट्टिका–2	सम्पूर्ण आहार वट्टिका–3
कार्बनिक पदार्थ	95.1	94.9	95.2
कुल खनिज	9.1	9.6	9.0
क्रूड प्रोटीन	10.3	10.7	11.2
उदासीन डिटरजेंट रेशा (N.D.F.)	69.7	67.7	64.7
अम्ल डिटरजेंट रेशा (A.D.F.)	47.5	43.7	42.7
लिग्निन	7.5	8.4	9.1

उपरोक्त तालिका में तीनों प्रकार की सम्पूर्ण आहार वटिट्का का रासायनिक सद्यटन दर्शाया गया है। उपचार द्वितीय एवं उपचारतृतीय में ऊँट कटेंला 30 प्रतिशत एवं ऊँट कटेंला 45 प्रतिशत मात्रा जैसे बढ़ते जाते है तो उन सम्पूर्ण आहार वटिट्काओं में क्रूड प्रोटीन की मात्रा ज्यादा होती है।

तालिका-4 विभिन्न समूहों में पोषक तत्वों की पाचकता एवं नाईट्रोजन संतुलन

पैरामीटर	सम्पूर्ण आहार वटि्टका–1	सम्पूर्ण आहार वटि्टका–2	सम्पूर्ण आहार वटि्टका–3
शुष्क पदार्थ	50.8	55.1	54.1
क्रूड प्रोटीन	46.2	57.5	55.3
उदासीन डिटरजेंट रेशा (N.D.F.)	47.9	46.3	46.1
नाईट्रोजन प्रतिशत संतुलन (अन्तर्ग्रहण)	46.1	57.2	55.4

विभिन्न समूहों में शुष्क पदार्थ एवं कार्बनिक पदार्थों की पाचकता समान पाई गई। (तालिका–4) अधिक मात्रा में ऊँट कटेंला मिलाने से खाद्‌य रेशों के घटकों (एन.डी.एफ. एवं ए.डी.एफ.) की पाचकता कम हुई। सभी भेड़ों में नाइट्रोजन संतुलन सकारात्मक रहा एवं समूह के मध्य कोई सार्थक विभिन्न मान नही है।

रूमेंण उपापचय

विभिन्न समूहों में रखी गई भेड़ों के रोमंथी पीएच (pH) में कोई परिवर्तन नहीं पाया गया । ऊँट कटेंला समावेशित सम्पूर्ण आहार वटि्टका खिलाने से भेड़ों में रोमंथी ग्रन्थियों में अमोनिया एवं वाष्पीकृत वसीय अम्ल की मात्रा में कमी दर्ज की गई। इसका मतलब यह हुआ कि ऊँट कटेंला समावेश से रोमंथी ग्रन्थियों में किण्वन प्रक्रिया से पैदा हुआ ज्यादातर अमोनिया एवं वाष्पीकृत वसीय अम्ल सूक्ष्म जैवीय प्रोटीन संश्लेषण के काम में लिया गया इस तथ्य की पुष्टि इन समूहों की भेडों के मूत्र से प्यूरीन व्युत्पन्न उत्सर्जन विधि द्वारा ज्ञात किये गये अधिक सूक्ष्म जैवीय प्रोटीन संश्लेषण भी में समावेश से भेड़ों के रोमंथी ग्रन्थियों में प्रोटोजोआ की संख्या में बढ़ोतरी पाई गई।

सूक्ष्मजैव प्रोटीन संष्लेषण

प्यूरीन व्युत्तपन्न उत्सर्जन से ज्ञात किए गए सूक्ष्मजीव प्रोटीन संश्लेषण में विभिन्न समूहों के बीच कोई सार्थक अन्तर नहीं पाया गया। रूमेन में सूक्ष्मजैवीय प्रोटीन के अंतिम उत्पाद को संश्लेशित किया गया। चौलाई समावेशित समूहों में बेहतर सूक्ष्मजैवीय प्रोटीन संश्लेषण क्षमता दर्ज की गई।

तालिका-5. विभिन्न समूहों में शारीरिक भार प्रदर्शन एवं पोषण स्तर

पैमाना	सम्पूर्ण आहार वटि्टका–1	सम्पूर्ण आहार वटि्टका–2	सम्पूर्ण आहार वटि्टका–3
प्रारम्भिक भार (किग्रा)	49.3	49.3	49.4
अंतिम भार (किग्रा)	51.0	50.7	51.2
भार में बदलाव (किग्रा)	1.7	1.2	1.8
प्रतिदिन भार में बदलाव (ग्रा)	48.2	34.3	51.4

उपरोक्त तालिका में तीनों प्रकार की सम्पूर्ण आहार वटिट्का की खिलाई–पिलाई के उपरान्त तृतीय उपचार सम्पूर्ण आहार वटिट्का –3 रातिब मिश्रण, अजंन घास,ऊँट कटेंला 45 प्रतिशत खिलाने पर शारीरिक भार में वृद्वि ज्यादा रिकार्ड की गई है।

पशु वृद्धि प्रदर्शन

परीक्षण के दौरान भेड़ों का देह भार तालिका–7 में दर्शाया गया है। सभी भेड़ों के भार में वृद्धि पाई गई तथा शोध समूहों के बीच औसत दैनिक वृद्धि में कोई सार्थक अन्तर नहीं पाया गया। पशुओं ने शोध समूहों में औसत 1047 एवं 1095 ग्राम आहार प्रतिदिन ग्रहण किया तथा प्रथम दिन से ही सम्पूर्ण आहार सम्पूर्ण आहार को रूचिकर पाया गया। शुष्क पदार्थ, पाचन योग्य क्रूड प्रोटीन एवं चयापचयी ऊर्जा का अन्तर्ग्रहण सभी समूहों में समान पाया गया।

निष्कर्ष

सम्पूर्ण आहार वट्टिका में ऊँट कटेंला समावेश से पर्याप्त स्वैच्छिक चारा अन्तर्ग्रहण होता है। ऊँट कटेंला के समावेश से भेडों में पोषण पाचकता एवं पोषण के स्तर में कंट्रोल समूह की तुलना में गैर सार्थक प्रभाव देखा गया एवं सूक्ष्मजैवीय प्रोटीन संश्लेषण में बेहतर प्रभाव देखा गया। अर्थात ऊँट कटेंला पारम्परिक चारों एवं मंहगे प्रोटीन स्रोतों का सफलतापूर्वक स्थान लेने में सक्षम है। अतः शुष्क एवं अर्धशुष्क जलवायु वाले क्षेत्रों में गर्मी ऋतु में उगने वाले चारा वनस्पति पशुओं को आहार की कमी के दिनों में अच्छे चारों की तरह उच्च गुणवत्ता एवं उचित मात्रा में पोषण आपूर्ति में सक्षम होती हैं। जिसे 26 प्रतिशत तक खाद्य घटकों के रूप में प्रयोग किया जा सकता है। फिर भी अपर्याप्त जानकारी की वजह से इन्हें पशु आहार में उचित रूप से उपयोग में नहीं लिया जाता है। ये चारे पशु आहार की उपलब्धता एवं आपूर्ति के अन्तर को कम करने एंव पशु उत्पादन में सहायक सिद्ध होते हैं।

जिस देश को अपनी भाषा और साहित्य का गौरव का अनुभव नहीं है, वह उन्नत नहीं हो सकता: डॉ. राजेंद्र प्रसाद

कृषि एवं पशुपालन प्रबंधन में महिलाओं का योगदान

सुरेश चन्द्र शर्मा, एल.आर. गुर्जर, रंगलाल मीणा एवं आर बी शर्मा

भारत एक कृषि प्रधान देश है। लगभग 75–80 प्रतिशत ग्रामीण परिवार आज भी पूर्णतया कृषि पर आधारित जीवन यापन करते है। कृषि में भी महिलाओं की अहम् भागीदारी होती है। साथ ही महिलाओं का गृह प्रबन्धन एवं पशु आहार उत्पादन व प्रबन्धन में विशेष योगदान रहता है। विश्व परिपेक्ष में भारत जनसंख्या बाहुल्य क्षेत्र है। विश्व की 17.74 प्रतिशत आबादी इस देश में है। पशुपालन एवं दुग्ध उत्पादन में हमें प्रथम स्थान प्राप्त है। हमारे देश की ग्रामीण अर्थव्यवस्था में होने वाली कुल आय का लगभग 25 से 30 प्रतिशत पशुपालन से आता है। इसलिए कह सकते हैं कि रोजगार व आमदनी हेतु पशुपालन ग्रामीण क्षेत्र का सुदृढ़ आधार है तथा छोटे किसानों एवं भूमिहीन महिलाओं के लिये आजीविका का एक प्रमुख साधन है। विशेषकर छोटे पशु जैसे भेड़–बकरी पालन से अच्छी एवं निश्चित आमदनी प्राप्त की जा सकती है।

भारत में कृषि में कार्यरत महिला कृषि मजदूरों की संख्या सन 1961 में 27.7 प्रतिशत थी। सन 1991–1992 में इनकी संख्या 58.1 प्रतिशत हो गई और इस समय लगभग 60–70 प्रतिशत है। वर्तमान में देश की जनसंख्या लगभग 130 करोड़ है, इसके साथ ही विगत वर्षों में पशु संख्या में भी उत्तरोत्तर सापेक्ष वृद्धि हुई है। इसके मद्देनजर खाद्यान एवं चारे की आपूर्ति रख पाना एक बहुत बड़ी चुनौती है। इस हेतु आवश्यक अन्न का उत्पादन एवं माँग के अनुरूप चारे की व्यवस्था सतत रूप से बनाये रखने में कृषि वैज्ञानिकों, कृषि विकास एवं प्रसार में लगे कार्यकर्ताओं, किसानों और महिलाओं के विशेष योगदान से ही सम्भव है।

कृषक महिलाओं का अन्न उत्पादन से लेकर भण्डारण तक में महत्वपूर्ण योगदान रहता है। केवल खाद्यान्न उत्पादन ही नहीं बल्कि चारा उत्पादन में भी विशेष भूमिका है जिसमें जमीन की तैयारी, बीज की बुवाई, सिंचाई, निराई,–गुड़ाई, फसल तथा चारे की कटाई, बीज एकत्रित करना, फसलों में कीट एवं व्याधि नियंत्रण के लिए पारम्परिक दवाओं का प्रयोग करना इत्यादि। पशुपालन कार्यों में अधिकांश कार्य जैसे :– गोबर उठाना, पशुशाला की सफाई, दूध दुहना, पशुओं को नहलाना, बर्तन साफ करना, दूध से अन्य उत्पाद बनाना, जानवरों को चारा डालना, खेत से चारा लाना आदि शत प्रतिशत कार्य महिलायें ही करती हैं। कृषि वैज्ञानिकों के अध्ययनों में यह पाया गया कि कृषि तथा पशुपालन एवं गृह कार्य जैसे सभी कार्यों में महिलायें प्रतिदिन 15 से 16 घंटे तक कार्यरत रहती हैं। इसमें से चारा उत्पादन एवं पशुपालन में लगभग 5 से 6 घंटे तक कार्य करती हैं। भारतीय चरागाह एवं चारा अनुसंधान संस्थान, झांसी के अध्ययन में यह पाया गया है कि कृषि तथा पशुपालन के 80–90 प्रतिशत कार्य महिलाओं द्वारा ही किये जाते हैं। अतः यह कहा जा सकता है कि अन्न व चारा उत्पादन एवं सफल पशुपालन की महिलाओं के बगैर कल्पना करना असम्भव है।

कृषि एवं चारा उत्पादन में योगदान

भारत में करीब 70 प्रतिशत कृषि श्रमिक, 80 प्रतिशत खाद्य उत्पादन एवं 10 प्रतिशत खाद्य पदार्थ प्रसंस्करण में महिलाओं की भागीदारी है। अन्न उत्पादन तथा पशुओं के आहार के लिए चारा उगाना आवश्यक है, महिलाओं की फसल पैदावार के साथ चारा उत्पादन में भी विशेष भूमिका है। बरसीम, जई, जौ, मक्का, चावल, गेहूँ आदि में जमीन की तैयारी में महिलाओं की 10–15 प्रतिशत भूमिका रहती है। खराब बीजों को चुनने में, सिंचाई, सीधी बुवाई, हवा में छंटाई 20 से 40 प्रतिशत रहती है। निराई, गुड़ाई, फसल सुखाई, अन्न भण्डारण में 70–90 प्रतिशत रहती है। महिलाओं की थ्रेसिंग में भागीदारी 30 से 50 प्रतिशत तथा चारा कटाई में 75 प्रतिशत रहती है। बढ़ती आबादी के कारण खेती का विस्तार करना आवश्यक हो गया है। इस कारण पशु चराई के लिये चरागाहों का क्षेत्रफल घटता चला गया। पैदावार की दृष्टि से भी चरागाह अविकसित हैं और अनियंत्रित चराई के शिकार हैं जिससे चारे की उपलब्धता एवं उत्पादकता पर विपरित असर पड़ा है। ऐसे में महिलाओं को अगर मिश्रित फसल पट्टियों, बहुवर्षीय घासों, बहुकटाई हरा चारा फसलों, फसल अवशेषों के यथोचित उपयोग से सम्बन्धित व्यवहारिक प्रशिक्षण दिया जाये तो अधिक अन्न, चारा उत्पादन कर अच्छा पशु उत्पादन कर सकती हैं और परिवार की आर्थिक स्थिति सुदृढ़ कर सकती हैं।

महिलाओं का पशुपालन में योगदान

महिलाओं की पशुपालन के विभिन्न कार्यो में अहम भूमिका रहती है। देश में ही नहीं अपितु विदेशों में भी पशुपालन में महिलाओं की विशेष भूमिका है। दक्षिण एशिया में महिलायें लगभग 5 घंटा 30 मिनट प्रतिदिन पशुपालन का कार्य करती हैं। पाकिस्तान में एक अध्ययन के अनुसार पशुप्रबन्धन गतिविधियों में पशु बाड़े की सफाई में 98.7 प्रतिशत, देशी खाद हेतु मैंगनी–गोबर के संग्रहण में 87.3 प्रतिशत, बाड़ों में पशुओं के दाना–पानी में 87.1 प्रतिशत एवं पानी पिलाने में 85.8 प्रतिशत की भागीदारी रहती है। हरियाणा राज्य में महिलायें पशुपालन में औसतन रोजाना 5–17 घण्टे कार्य करती है। पशु प्रबन्धन से 64 प्रतिशत चारा–दाना खिलाने में, 76 प्रतिशत प्रबन्धन में, 100 प्रतिशत गोबर–मैंगनी समेटने में एवं 89 प्रतिशत दुध दुहने में योगदान देती हैं। बुन्देलखण्ड क्षेत्र में एक अध्ययन से ज्ञात हुआ है कि महिलायें पशुपालन के विभिन्न कार्यों को करती हैं, उसमें पशुशाला की सफाई 83 प्रतिशत, जानवरों को पानी पिलाना 89 प्रतिशत, दूध निकालना/दुहना 97 प्रतिशत, बीमार पशुओं की देखभाल 90 प्रतिशत, चारे की कुट्टी करना 68 प्रतिशत एवं खेत से चारा लाना 70 प्रतिशत करती हैं। यह भागीदारी लघु एवं सीमातं किसानों में अधिक होती है एवं वृहत् किसान महिलाओं में कम होती जाती है। परन्तु भूमिहीन कृषक महिलायें आमदनी के कोई अन्य साधन ना होने के कारण पशुपालन का शत प्रतिशत कार्य बहुत अच्छे से करती है। लघु एवं सीमांत कृषक महिलाओं की भूमिका अधिक पायी गई तथा वृहद किसान महिलायें पशुपालन के सभी कार्य नहीं करती हैं, क्योंकि उनके यहां लधु कृषक महिलायें गोशाला की सफाई, गोबर उठाना, खेत से चारा लाना इत्यादि कार्य करती है।

> प्रान्तीय ईर्ष्या–द्वेष को दूर करने में जितनी सहायता इस हिंदी प्रचार से मिलेगी, उतनी दूसरी किसी चीज़ से नहीं मिल सकती: सुभाषचंद्र बोस

चारा उत्पादन एवं पशुपालन में महिलाओं की समस्याऐं

- महिलाओं का कृषि सम्बन्धित कार्यों एवं पशुपालन में कई तरह की समस्याओं का सामना करना पड़ता है। सबसे प्रमुख समस्या साक्षरता एवं शिक्षा की है। इस कारण उन्हें आधुनिक कृषि एवं वैज्ञानिक पशु पालन के तरीकों को समझने एवं अपनाने में कई परेशानियों का सामना करना पड़ता है।
- सामाजिक रीति–रिवाजों एवं जातिगत बन्धन भी पशुपालन में महिलाओं को बाधा पहुँचाते हैं। इस कारण अधिक आर्थिक लाभ वाले छोटे पशुओं का पालन नहीं कर पाती है जैसे खरगोश पालन, मुर्गी पालन, सुअर पालन इत्यादि।
- कृषि में व्याधि रोग एवं कीट नियंत्रण दवा उर्वरकों, उन्नत किस्म के बीजों इत्यादि हेतु एवं पशुपालन में उन्नत नस्ल की उपलब्धता, रोगों की उपयुक्त दवाइयों एवं रातिब मिश्रण व मिनरल मिक्चर जैसी आवश्यक वस्तुओं के लिये पुरूषों पर आश्रित होने के कारण समय पर उपलब्धता नहीं हो पाती है और उचित प्रबन्धन में दिक्कते आती है जिससे उत्पादन पर विपरीत असर पड़ता है।

सफल कृषि उत्पादन एवं पशुपालन हेतु महिलायें क्या करें

कृषक महिलायें निम्न बिन्दुओं को ध्यान में रखते हुए कृषि एवं पशुपालन सम्बन्धित कार्य करें तो अधिक आर्थिक लाभ प्राप्त कर सकती हैं।

- सर्वप्रथम भूमि परीक्षण करायें। भूमि के स्वास्थ्य कार्ड के अनुरूप ही फसल का चुनाव करें एवं आवश्यक खाद व उर्वरकों का प्रयोग करें।
- फसलों की किस्मों के चुनाव में इस बात का ध्यान रखें कि अन्न उत्पादन के साथ–साथ चारे का उत्पादन भी अच्छा हो जिससे पशुपालन सुगमता से कर सकें।
- फसल व चारे की कटाई के उन्नत विकसित दंराति अथवा हंसिये का प्रयोग करें जिससे कम श्रम में अधिक कार्य कर सकें और थकान कम हो।
- अच्छी नस्ल के ही पशु रखें, चाहे पशुओं की संख्या कम हो ताकि उतने श्रम में अधिक उत्पादन ले सकें।
- पशुओं को रखने की जमीन का फर्श पक्का हो, लेकिन अधिक चिकना नहीं होना चाहिये। ईंटों का फर्श सबसे उत्तम होता है। सफाई करने में आसानी रहती हो और मक्खी–मच्छर भी कम होते हो जिससे पशुओं में बीमारियां कम आती है।
- पशुओं को चारा कुट्टी करके ही खिलायें। चारा खिलाने के लिए नांद पक्की अथवा लोहे की चद्दर से बने टर्फ का प्रयोग करें जिससे अतिरिक्त चारा बरबाद नहीं होगा, एवं पशु आसानी से चारा खा सकेंगे।

- पशुओं को बांधकर रखें, उन्हें संतुलित व पौष्टिक चारा खिलायें जिससे दुग्ध उत्पादन में वृद्धि होगी तथा मनुष्य भी स्वस्थ रहेंगे।
- बीमार पशुओं को स्वस्थ पशुओं से अलग रखें इससे संक्रमित रोगों से बचाव में सहायता मिलती है।
- पशुओं के बीमार होने पर शीघ्र पशु चिकित्सक को दिखायें अंध विश्वास में न पड़ें ।
- सबसे मुख्य और आवश्यक तथ्य है, कि अपने पशुओं को समय पर बीमारियों से बचने के टीके लगवायें जिससे पशुओं को संक्रमित होने से बचाया जा सके।
- वातावरण के अनुसार फसलों के चुनाव में परिवर्तन करें एवं अपनी सोच में सकारात्मक परिवर्तन करें तो अधिक लाभ होगा।
- महिलायें चारा उत्पादन की वैज्ञानिक विधि की खेती के ज्ञान में बढ़ोतरी कर, कौशल हासिल करके अपनी आत्मर्निभरता एवं अपनी आय में बढ़ोतरी करें।

इस प्रकार निष्कर्ष रुप में कह सकते हैं कि फसल उत्पादन में दुग्ध उत्पादन, मुर्गीपालन या मछली पालन सभी में महिलाओं का विशेष योगदान रहता हैं। कृषक महिलायें अपने पशुपालन में ऊपर बताये गये बिन्दुओं पर अमल करके दुग्ध उत्पादन में वृद्धि कर सकती हैं। जिससे उनकी आय में बढ़ोतरी तो होगी ही तथा सामाजिक स्तर में भी निश्चय ही वृद्धि होगी।

हमारी नागरी लिपी दुनिया की सबसे वैज्ञानिक लिपी है:
राहुल सांकृत्यायन

बदलते आर्थिक एवं सामाजिक ग्रामीण परिवेश में : भेड़ पालन

एल.आर. गुर्जर, राजकुमार, रंगलाल मीणा एवं एस.सी. शर्मा

भारत की आर्थिक व्यवस्था मुख्यतया कृषि पर आधारित है जिसकी लगभग 58 प्रतिशत जनसंख्या कृषि एवं कृषि सम्बन्धित आयामों पर आश्रित है। 19वीं पशुधन जनगणना (2012) के अनुसार भारत में भेड़ों की संख्या 65.00 मिलियन थी जो कि पूर्वोत्तर पशुधन जनगणना (2007) से लगभग 9.07 प्रतिशत कम थी। संख्या के आधार पर राज्यों की स्थिति आन्ध्रप्रदेश (40 मिलियन), (कर्नाटक 14.73 मिलियन) एवं राजस्थान (13.95 मिलियन) क्रमशः पहले, द्वितीय एवं तृतीय स्थान पर हैं। राजस्थान राज्य का कुल भेड़ों की संख्या में 21 प्रतिशत योगदान है। राज्यों के परिपेक्ष्य में देखा जाये तो राजस्थान क्षेत्रफल की दृष्टि से सबसे बड़ा प्रदेश है। इसका क्षेत्रफल लगभग 3.42 लाख वर्ग कि.मी. है। राज्य का अधिकतर भू–भाग शुष्क एवं अर्द्धशुष्क जलवायु के अन्तर्गत आता है एवं राज्य का आर्थिक आधार मुख्यतः खेती एवं पशुपालन पर आधारित है। पूर्णतया वर्षा पर आधारित खेती, लगातार सूखे की स्थिति एवं वर्षा के कम होने के परिणामस्वरूप लोगों की टिकाऊ आजीविका बनाये रखने में एक बड़ी समस्या है। राज्य की जलवायु परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुये किसानों को खेती के साथ–साथ पशुपालन करना आर्थिक रूप से मजबूती प्रदान करता है। पशुपालन व्यवसाय देश एवं राज्य के सकल घरेलु उत्पाद में एक महत्वपूर्ण स्थान रखने लगा है। राजस्थान में लगभग 80 प्रतिशत से अधिक ग्रामीण जनसंख्या पशुधन रखती है।

आर्थिक एवं प्राकृतिक संसाधनों से सम्पन्न किसान बड़े जानवर (भैंस, गाय) पालकर अपनी आमदनी और सुदृढ़ कर सकते हैं। लेकिन आर्थिक रूप से पिछड़े हुए किसान जिनके पास प्राकृतिक संसाधन की भी कमी होती है ऐसे किसानों के लिए भेड़–बकरी (लघु रोमन्थी जानवर) पालन व्यवसाय उनकी आजीविका को सुदृढ़ करने में एक वरदान साबित हो रहा है। भेड़ ने विश्व इतिहास में पुरा–पाषाण युग से ही महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। लोग पाषाण युग में भेड़ों को समूह में पालते थे और उनसे प्राप्त ऊन से निर्मित वस्त्रों को पहनने ओढ़ने और बिछाने के काम में लेते थे। सर्वप्रथम भेड़ पालन मुख्यतया ऊन प्राप्त करने के उद्देश्य से ही किया जाता था। भेड़ से प्राप्त होने वाली ऊन को बिना धागा में परिवर्तित किये नमदा बनाया जाता था। जो बहुपयोगी कार्यों के रूप में सदियों से उपयोग करते आ रहे हैं। ऊन के साथ–साथ यह जानवर बहुपयोगी रहा है इससे ऊन, माँस, खाल, दूध, खाद इत्यादि उत्पाद प्राप्त होते हैं। भारतीय परिपेक्ष में बड़े पशुओं की तुलना में भेड़ पालन लघु एवं सीमांत किसानों, खेतीहर मजदूरों तथा ग्रामीण महिलाओं के लिये जीविकोपार्जन का एक अद्वितीय साधन है।

आर्थिक स्थिति में बदलाव से भेड़ पालन की स्थिति

भेड़ पालन ग्रामीण जीवन का अभिन्न अंग है। विशेषतया राजस्थान जैसे अकाल एवं सूखाग्रस्त राज्यों का जिनमें भेड़पालन ग्रामीणों की जिन्दगी जीने के लिये आधार व्यवसाय बना हुआ है। राजस्थान में रायका समुदाय भेड़ पालन में प्राचीन समय से जुड़ा है जिनका अधिकतर जीवन भेड़ों के साथ निष्क्रमण पर रहकर ही गुजरता है। लाखो परिवार अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु इनका पालन करते हैं। भेड़ अपने कई गुणों के कारण कई पशुओं से उत्तम है। यह सिंचाई रहित, कम उपजाऊ, उबड़–खाबड़ भूमि वाले, नहीं के बराबर घास वाले, पानी की बहुत कमी वाले क्षेत्रों तथा शुष्क एवं अर्द्धशुष्क क्षेत्रों में अपना जीवन व्यतीत कर सकती है। यह पर्वतीय और अधिक ठंडे क्षेत्रों में भी आसानी से पाली जा सकती है। भारतवर्ष में भेड़ पालन का प्रचलन मुख्यतया ऊन की आवश्यकता के आधार पर हुआ था। भारत में औसतन प्रतिवर्ष एक भेड़ से लगभग 900 ग्राम ऊन प्राप्त होती थी व राजस्थान में पाली जाने वाली भेड़ों से औसतन प्रतिवर्ष लगभग 1200 ग्राम प्रतिवर्ष भेड़ ऊन प्राप्त होती थी। अधिकतर भारतीय ऊन मोटे किस्म की होती है। ऊन की माँग एवं पूर्ति के आधार पर भेड़ पालकों को ऊन के उचित दाम मिलते थे साथ ही माँस, खाल एवं मेंगनी की कीमत भी अच्छी मिल जाती थी जिसकी वजह से यह व्यवसाय और अधिक प्रचलन में हो गया था। भारत वर्ष के वर्तमान परिदृश्य में इस व्यवसाय की स्थिति भी बदलने लगी है। ऊन के कई विकल्प आने की वजह से इसके दाम काफी कम मिलने लगे बल्कि यूँ कहें कि ऊन उत्पादन अब भेड़ पालकों के लिए लाभ का सौदा नहीं रहा है। गाँवों में भेड़ पालकों की स्थिति यह हो गई कि वे अपने भेड़ों की ऊन, ऊन कतरने वाले को कतरन के आधार पर ही देने के लिए राजी हो रहे हैं।

भारत के गाँवों में विकास की लहर जैसे—जैसे बढ़ने लगी और लोगों की आर्थिक स्थिति सुदृढ़ होने व अन्य संसाधनों की उपलब्धता के कारण अधिकतर किसान भेड़ पालन व्यवसाय को छोड़कर गाय एवं भैंस पालन की ओर अग्रसर होते जा रहे हैं। किसानों का मानना है कि भैंस एवं गाय पालन व्यवसाय से नियमित व अधिक आमदनी प्राप्त होती है जिससे रोजमर्रा की आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकते हैं और यही मुख्य कारण है जिसके कारण भारत में दुग्ध उत्पादन बढ़ता जा रहा है और विश्व में भारत का दुग्ध उत्पादन में प्रथम स्थान है। किसानों की आर्थिक स्थिति मजबूत होने से उनमें जोखिम उठाने की क्षमता भी बढ़ जाती है। प्रायः देखा जा रहा है ग्रामीण क्षेत्रों में कृषि एवं इससे सम्बन्धित विभिन्न आयामों पर छोटे—बढ़े कई रोजगारोन्मुखी व्यवसाय पनपने लगे हैं। संसाधन सम्पन्न किसान भेड़—बकरी पालन व्यवसाय से दूसरे व्यवसायों की तरफ खिसक रहे हैं जबकि दूसरी तरफ यह देखा जा रहा है कि बड़े उद्यमी व व्यवसायी भेड़—बकरी पालन व्यवसाय में रूचि दिखा रहे हैं। राजस्थान में कई जिलों में भेड़—बकरी के बड़े—बड़े फार्म खुल रहे हैं जिनमें युवा पीढ़ी काफी रूचि ले रही है और यह व्यवसाय उनके लिए फायदे का सौदा भी साबित हो रहा है। भेड़ पालन के विभिन्न पहलुओं पर ध्यान दिया जाये तो यह व्यवसाय इच्छुक व्यक्तियों के लिये लाभ कमाने वाला व्यवसाय हो सकता है। प्रशिक्षण कार्यक्रमों के माध्यम से वैज्ञानिक पद्धति द्वारा भेड़ पालन के विभिन्न पहलुओं जैसे नस्ल सुधार, स्वास्थ्य प्रबन्धन, पोषण प्रबन्धन, प्रजनन प्रबन्धन, आवास एवं उनका रखरखाव, ऊन की उपयोगिता, जानवरों का विपणन इत्यादि विषयों पर जोर देकर उनका कौशल विकास किया जाये ताकि युवा पीढ़ी व इच्छुक व्यक्ति इस व्यवसाय को भली भाँति समझकर अपने भविष्य की इस क्षेत्र में नींव रख सकें।

सामाजिक बदलाव से भेड़ पालन की स्थिति

भारत वर्ष में भेड़ पालन प्राचीन समय से ही चलता आ रहा है। सर्वप्रथम भेड़ पालन ग्रामीणों की अपनी आवश्यकताओं के आधार पर किया जाता था जिससे वे अपनी घरेलू आवश्यकताओं एवं आजीविका को सही तरीके से चला सके। वर्तमान समय के साथ समाजों में तकनीकी, सामाजिक, आर्थिक एवं शिक्षा के मूलभूत स्तरों में बदलाव आने के कारण भेड़ पालन व्यवसाय में भी बदलाव की स्थिति देखी गयी है। ग्रामीण परिवेश में पहले भेड़ पालन जाति वर्ग विशेष न होकर ज्यादातर ग्रामीणों की आजीविका का मुख्य स्त्रोत था। समय परिवर्तन के साथ लोगों ने इस व्यवसाय से विमुख होकर दूसरे व्यवसायों की तरफ अपने कदम बढ़ा लिये और यह व्यवसाय अब भूमिहीन व आर्थिक रूप से कमजोर व्यक्तियों का व्यवसाय के रूप में पहचान बन गया है। ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्रों में लोगों द्वारा इस व्यवसाय को नकारात्मक आर्थिक स्थिति के रूप में देखा जाने लगा है। भेड़—बकरी पालन करने वाले लोगों को शिक्षा, सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति के रूप से पिछड़े हुए समूह के रूप में मानने लगे हैं साथ ही उनकी प्रतिष्ठा भी कम मानी जाती है। जिसकी वजह से उनके बच्चों के शादी—विवाह में भी समस्या आने लगी है। वर्तमान समय में युवा पीढ़ी भेड़—बकरी पालन में कम रूचि रखने लगी है। साथ ही उनके माता—पिता भी नहीं चाहते कि उनका बच्चा भेड़—बकरी पालन करे। क्योंकि इस व्यवसाय को समाज के लोग पिछड़े लोगों के व्यवसाय के रूप में मानते हैं जबकि आर्थिक दृष्टि से भेड़—बकरी पालन व्यवसाय ग्रामीण लोगों की आजीविका में महत्वपूर्ण योगदान रखता है। इस व्यवसाय को बढ़ावा देने के लिये केन्द्रीय एवं राज्य सरकारों ने विभिन्न केन्द्रीय एवं राज्य कृषि अनुसंधान संस्थानों एवं विश्वविद्यालयों के माध्यम से विभिन्न विकास एवं अनुसंधान योजनाऐं लागू की हैं। इन योजनाओं का प्रमुख उद्देश्य इस रोजगार को और अधिक लाभकारी बनाना है। जिससे युवापीढ़ी इस रोजगार की ओर आकर्षित हो। इन योजनाओं के तहत माँस की मांग को ध्यान में रखते हुये भेड़ों की उन्नत नस्ल विकसित की है जिससे अधिक बच्चे पैदा किये जायें। केन्द्रीय भेड़ एवं ऊन अनुसंधान संस्थान, अविकानगर ने एक ऐसी भेड़ अविशान जो देश की तीन नस्लों के क्रोस (गैरोल, मालपुरा, पाटनवाड़ी) से इजाद की है। जिसका मुख्य उद्देश्य अधिक बच्चे प्राप्त करना है ताकि किसानों की आय में बढ़ोतरी हो सके। समुचित आहार उत्पादन हेतु चारा की नई फसलों को विकसित किया जा रहा है, फसलों से प्राप्त उत्पादों को भेड़ों के खाने योग्य बनाने के लिये ऐसे अनुसंधान किये जा रहे हैं जिससे पोष्टिक आहार प्राप्त हो सके। भेड़ों की बिमारियों से निजात पाने के लिये अनुसंधान कर नई दवाईयाँ एवं टीके उपलब्ध कराये जा रहे हैं ताकि रेवड़ों में बिमारियाँ व मृत्युदर कम हो सके।

थार मरुस्थल में खेजड़ी (प्रोसोपिस सिनेरेरिया) लगाकर किसान खेती के साथ–साथ पशुपालन कर आय बढ़ाएं

बी. लाल[1], आर. एल. मीणा[1], एस सी शर्मा[1], प्रियंका गौतम[2], लीला राम गुर्जर[1],महेश चन्द मीणा[1]
आर.पी. चतुर्वेदी[1], हरी सिंह मीणा[3], आर्तबंधु साहू[1]

राजस्थान का सतह क्षेत्र 342290 वर्ग किलोमीटर है जबकि थार 196150 वर्ग किलोमीटर तक फैला हुआ है। यह राज्य के कुल भौगोलिक क्षेत्र का 60 प्रतिशत से अधिक है। मानव आबादी 17.5 मिलियन है जिसमें से 77 प्रतिशत ग्रामीण और 23 प्रतिशत शहरी हैं। इस क्षेत्र में उत्पादन और जीवन समर्थन प्रणाली जैव–संबंधी और पर्यावरणीय सीमाओं से बाधित है। जैसे कि कम वार्षिक वर्षा (100–400 मिमी), मानसून आने से पहले बहुत अधिक तापमान (45 से 47 डिग्री तापमान) और औसतन बहुत तेज हवा और आँधियाँ जो कि 8 से 10 किलोमीटर की रफ्तार से चलती हैं जिससे की स्वेद–वाष्पोत्सर्जन (वार्षिक 1500 से 2000 मिमी) बहुत अधिक होता है। यहां की मृदा रेतीली, कंकरीली एवं लवणीय होती है जिसमें पोषक तत्व भी बहुत कम होते हैं और करीब 58 प्रतिशत रेत के टीले हैं जिसमें खेती करना किसानों के लिए और भी मुश्किल होता है। राजस्थान मुख्यतः एक कृषि व पशुपालन प्रधान राज्य है। अल्प व अनियमित वर्षा के बावजूद यहाँ लगभग सभी प्रकार की फसलें उगाई जाती हैं। रेगिस्तानी क्षेत्र में बाजरा, कोटा में ज्वार व उदयपुर में मुख्यतः मक्का उगाई जाती हैं। राज्य में गेहूँ व जौ का विस्तार अच्छा–खासा (रेगिस्तानी क्षेत्रों को छोड़कर है। ऐसा ही दलहन (मूंग, मोठ, चना, मटर, सेम व मसूर जैसी खाद्य फलियाँ), गन्ना व तिलहन के साथ भी है। चावल की उन्नत किस्मों को भी यहाँ उगाया जाने लगा है। चंबल घाटी' और 'इंदिरा गांधी नहर परियोजनाओं' के क्षेत्रों में इस फसल के कुल क्षेत्रफल में बढ़ोतरी हुई है।

सारणी 1 राजस्थान के थार रेगिस्तान में भूमि का उपयोग

वर्ग	क्षेत्र $x10^3$	कुल का प्रतिशत
जंगल	240	1.3
गैर. कृषि बंजर भूमि बंजर	1584	8.4
अन्य गैर.खेती, रेंज और अन्य चराई भूमि	5844	31.2
परती भूमि	2949	15.7
नेट बोया क्षेत्र	8182	43.5
कुल रिपोर्ट भूमि उपयोग	18749	95.6
राजस्थान की कुल शुष्क भूमि	19615	100.0

थार मरुस्थल में पशुपालन का किसानों की आय बढ़ाने में महत्व

राजस्थान की अर्थव्यवस्था मुख्य रूप से कृषि कार्यों एव पशुपालन पर ही निर्भर करती है तथा कृषि के उपरान्त पशुपालन को ही जीविका का प्रमुख साधन माना जा सकता है। राजस्थान में प्रायः सूखे की समस्या रहती है। इसी वजह से पशुओं को पर्याप्त मात्रा में चारा उपलब्ध नहीं हो पाता। राज्य के मरुस्थलीय और पर्वतीय क्षेत्रों में भौगोलिक और प्राकृतिक परिस्थितियों का सामना करने के लिये एकमात्र विकल्प पशुपालन व्यवसाय ही रह जाता है । राज्य में जहाँ एक ओर वर्षाभाव के कारण कृषि से जीविकोपार्जन करना कठिन होता है, वहीं दूसरी ओर औद्योगिक रोजगार के अवसर भी नगण्य हैं। ऐसी स्थिति में ग्रामीण लोगों ने पशुपालन को ही जीवन शैली के रूप में अपना रखा है। पशुपालन व्यवसाय से राज्य की अर्थव्यवस्था अनेक प्रकार के प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष घटकों से लाभान्वित होती है। पशुपालन देश के ग्रामीण क्षेत्रों में एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण आर्थिक गतिविधि है जिससे कृषि पर निर्भर परिवारों को अनुपूरक आय प्राप्त होती है। हॉलाकि यहाँ का अधिकांश क्षेत्र शुष्क या अर्द्ध–शुष्क है, फिर भी राजस्थान में बड़ी

संख्या में पालतू पशु हैं व राजस्थान सर्वाधिक ऊन का उत्पादन करने वाला राज्य है। ऊँटों व शुष्क इलाकों के पशुओं की विभिन्न नस्लों पर राजस्थान का एकाधिकार है। राजस्थान में पशु–सम्पदा का विशेष रूप से आर्थिक महत्व माना गया है। राज्य के कुल क्षेत्रफल का 61 प्रतिशत मरुस्थलीय प्रदेश है, जहाँ जीविकोपार्जन का मुख्य साधन पशुपालन ही है। इससे राज्य की शुद्ध घरेलू उत्पत्ति का महत्त्वपूर्ण अंश प्राप्त होता है। पशु सम्पदा की दृष्टि से राजस्थान एक समृद्ध राज्य है। यहाँ भारत के कुल पशुधन का लगभग 11.5 प्रतिशत मौजूद है। क्षेत्रफल की दृष्टि से पशुओं का औसत घनत्व 120 पशु प्रति वर्ग किलोमीटर है जो सम्पूर्ण भारत के औसत घनत्व (112 पशु प्रति वर्ग किलोमीटर) से अधिक है। पशुओं की बढ़ती हुई संख्या अकाल और सूखे से पीड़ित राजस्थान के लिये वरदान सिद्ध हो रही है। आज राज्य की शुद्ध घरेलू उत्पत्ति का लगभग 15 प्रतिशत भाग पशु सम्पदा से ही प्राप्त हो रहा है। राजस्थान में देश के कुल दुग्ध उत्पादन का अंश लगभग 10 प्रतिशत होता है। राज्य के पशुओं द्वारा भार–वहन शक्ति 35 प्रतिशत है । भेड़ के माँस में राजस्थान का भारत में अंश 30 प्रतिशत है। ऊन में राजस्थान का भारत में अंश 40 प्रतिशत है। राज्य में भेंड़ों की संख्या समस्त भारत की संख्या का लगभग 25 प्रतिशत है।

थार मरुस्थल की जीवन रेखा खेजड़ी का किसानों की आय बढ़ाने में महती भूमिका

भारतीय संस्कृति में पेड़–पौधों का बेहद खास महत्व है। कोई इसे पर्यावरण की दृष्टि से महत्व देता है तो कोई अपनी धार्मिक आस्थाओं के कारण। ऐसे ही कुछ पेड़ों में से एक है शमी का पेड़ जिसे खेजड़ी का पेड़ भी कहा जाता है। खेजड़ी या शमी एक वृक्ष है जो थार के मरुस्थल एवं अन्य स्थानों में पाया जाता है। यहां के लोगों के लिए खेजड़ी का वृक्ष बहुत उपयोगी है। इसके अन्य नामों में घफ (संयुक्त अरब अमीरात), खेजड़ी, जांट/जांटी, सांगरी (राजस्थान), जंड (पंजाबी), कांडी (सिंध), वण्णि (तमिल), शमी, सुमरी (गुजराती) आते हैं। इसका व्यापारिक नाम कांडी है। यह वृक्ष विभिन्न देशों में पाया जाता है जहाँ इसके अलग अलग नाम हैं। अंग्रेजी में यह प्रोसोपिस सिनेरेरिया नाम से जाना जाता है। खेजड़ी का धार्मिक कार्यों में भी विशेष महत्व है। इसके सूखे छिलके को यज्ञ में काम में लिया जाता है। इसके अलावा हर धार्मिक कार्य में खेजड़ी की प्रमुखता बनी रहती है। रेगिस्तान में जब खाने को कुछ नहीं होता, तब खेजड़ी चारा देता है, जो 'लूंग' कहलाता है। इसके फूल को 'मींझर' व फल को 'सांगरी' कहते हैं। ज्येष्ठ के माह में यह पेड़ हरा भरा रहता है। इस पेड़ की लकड़ी मजबूत होती है जो किसानों के लिए जलाने और फर्नीचर बनाने के काम आती है।

खेजड़ी शुष्क और अर्द्धशुष्क क्षेत्रों में पाया जाने वाला बहुउपयोगी वृक्ष है। यह लेग्यूमिनेसी कुल का फलीदार पेड़ है। इसकी पत्तियां उच्च कोटि के चारे के लिए प्रख्यात है। खेजड़ी की पत्तियों का चारा बकरी, ऊंट और दूसरे पशु बड़े चाव से खाते हैं। इसकी कच्ची फलियों (सांगरी) की बाजार में खासी मांग रहती है। बाजार में सांगरी 500–600 रूपये प्रतिकिलो के भाव से मिलती है। लेग्यूमिनेसी कुल का पेड़ होने के कारण यह वायुमंडल से नत्रजन स्थिरीकरण भी करता है। खेजड़ी के पेड़ो में सूखारोधी के अलावा सर्दियों में पडने वाले पाले और उच्च तापमान सहन करने की असीम क्षमता है। इन विशेषताओं को देखते हुए वर्षा आधारित खेती करने वाले किसानों के लिए खेजड़ी का उत्पादन सोने पर सुहागा साबित हो सकता है। हरे चारे का उत्पादन लगभग 59 क्विंटल प्रति वृक्ष प्राप्त किया जा सकता है। खेजडी के बारे में एक बहुत पुरानी कहावत है कि जिस किसान के पास 1 पेड़ खेजड़ी, एक बकरी और एक ऊंट हो वह अकाल में भी जीवनयापन कर सकता है।

लूंग और सांगरी का पौषकीय महत्व

खेजड़ी से मिलने वाली लूंग में 14–18 प्रतिशत क्रूड प्रोटीन, 15–20 प्रतिशत रेशा और 8 प्रतिशत खनिज लवण पाये जाते हैं। खनिज लवण में कैल्शियम और फॉस्फोरस की अधिकता होती है। कच्ची सांगरी में औसतन 8 प्रतिशत प्रोटीन, 28 प्रतिशत रेशा, 2 प्रतिशत वसा, 0.4 प्रतिशत कैल्शियम और 0.2 प्रतिशत आयरन तत्व पाया जाता है। बात करें पक्की फलियों में मौजूद पोषक तत्व की तो 8–15 प्रतिशत प्रोटीन, 40–50 प्रतिशत कार्बोहाइड्रेट, 15 प्रतिशत शर्करा और 9–21 प्रतिशत रेशा होता है।

सारणी 2 खेजड़ी की पत्तियों एवं फलों में पोषक तत्वों की मात्रा

पोषक तत्व	पत्तियाँ (%)	फल (%)
क्रूड प्रोटीन	11.9	18.0
क्रूड रेशे	17.5	26.0
ईथर सार	2.9	—
कार्बोहायड्रेट	—	56.0
वसा	—	2.0
नत्रजन मुक्त सार	43.5	—
राख	8.1	—
फॉस्फोरस	0.4	0.4
कैल्शियम	2.1	0.4
लोहा	—	0.2

खान और उनके सहयोगी (2006)

खेजड़ी आधारित कृषि प्रणाली से फसलों की उत्पादकता पर प्रभाव

इक्कीसवीं सदी में हमें बढ़ती हुई जनसँख्या के लिए भोजन, रेशा, ईंधन की आपूर्ति एवं घर बनाने के लिए लकड़ी की आवश्यकता पूर्ति करने के लिए मिश्रित कृषि प्रणाली की जरूरत है । जिसमें पेड़ों के साथ साथ फसल उत्पादन को भी कम संसाधनों से लिया जा सके इसके अलावाए लेगुमिनोसी वंश के वृक्षों के नीचे फसल उत्पादकता में भी वृद्धि होती है, क्योंकि ये वृक्ष वातावरण की नत्रजन को मृदा में स्थिरीकरण कर भूमि की उर्वरता बढ़ाने में महत्वपूर्ण योगदान देते हैं और ये वृक्ष शुष्क क्षेत्रों में अधिक तापमान से पानी का भूमि की सतह से एवं वाष्पोत्सर्जन से भाप बन कर उड़ने वाले पानी को भी रोकने में सहायक होते हैं। अनुसंधानकर्ताओं ने यह सिद्ध किया किया है कि खेजड़ी के साथ चारा, दलहन एवं तिलहन फसलों को लगाने से उत्पादकता में वृद्धि होती है जिससे कि किसानों को पशुओं के लिए चारा और मनुष्यों के लिए अधिक फसल का उत्पादन मिलता है। इसके साथ साथ रेगिस्तान में मरुस्थल के विस्तार को रोकने में भी अहम भूमिका अदा करते हैं।

सारणी 3 खेजड़ी के साथ और अकेले उगाये जाने वाली विभिन्न फसलों के हरे एवं सूखे चारे की उत्पादकता (टन प्रति हेक्टेयर) पर प्रभाव

फसल क्रम	हरे चारे की उत्पादकता (टन प्रति हे.)		सूखे चारे की उत्पादकता (टन प्रति हे.)	
	खरीफ	रबी	खरीफ	रबी
खेजड़ी के साथ				
लोबिया—टोडीया	11.33	20.59	3.83	9.10
बाजरा—टोडीया	14.85	19.49	4.99	8.17
ग्वार—टोडीया	7.31	19.76	2.49	8.71
बुफ्फेल घास—बुफ्फेल घास	6.08	—	2.39	—

फसल क्रम	हरे चारे की उत्पादकता (टन प्रति हे.)		सूखे चारे की उत्पादकता (टन प्रति हे.)	
	खरीफ	रबी	खरीफ	रबी
खेजड़ी के बिना				
लोबिया—टोडीया	9.12	18.78	3.05	8.52
बाजरा—टोडीया	11.82	16.39	4.00	7.35
ग्वार—टोडीया	6.20	17.80	2.03	8.04
बुफ्फेल घास—बुफ्फेल घास	6.54	—	2.36	—

कौशिक और कुमार (2001)

खेजड़ी आधारित कृषि प्रणाली में वृक्षों के बीच एकवर्षीय फसलों की उत्पादकता अकेले उगाने वाली फसों की तुलना में अधिक प्राप्त हुई (सारणी 2) वृक्ष और फसल के बीच नमी और सूर्य के प्रकाश के लिए कम प्रतिस्पर्धा हुई इसके अलावा खेजड़ी की जड़ें जमीन में बहुत गहराई में जाती है, जिससे की मृदा की नमी में भी सुधार होता है और खेजड़ी वृक्षों की भी एकवर्षीय फसलों पर सही प्रभाव देखा गया जो की अधिक उत्पादन एवं उत्पादकता बढ़ाने में सहायक सिद्ध हुआ। खेजड़ी आधारित कृषि प्रणाली में अनाज एवं चारे का अधिक उत्पादन होने से मुनाफा भी अधिक हुआ क्योंकि इसमें एकवर्षीय फसलों के साथ साथ खेजड़ी से भी फल और चारे की आपूर्ति होने से उत्पादकता बढ़ी जिससे कि अतिरिक्त लाभ हुआ (सारणी 3) ।

सारणी 4 खेजड़ी के साथ और अकेले उगाये जाने वाली विभिन्न फसलों का अर्थशास्त्र

फसल क्रम	खेती की लागत	कुल आय	शुद्ध आय	लाभःलागत अनुपात
खेजड़ी के साथ				
लोबिया—टोडीया	5641	20046	14905	3.55
बाजरा—टोडीया	6675	20772	15197	3.73
ग्वार—टोडीया	5795	18591	12796	3.21
बुफ्फेल घास—बुफ्फेल घास	6303	12276	5973	1.95
खेजड़ी के बिना				
लोबिया—टोडीया	3976	8370	4399	2.10
बाजरा—टोडीया	3910	8463	4553	2.16
ग्वार—टोडीया	4130	7200	3070	1.74

कौशिक और कुमार (२००१)

खेजड़ी वृक्ष का वृक्ष घनत्व (पेड़ प्रति है.) से भी फसलों की उत्पादकता पर प्रभाव पड़ता है इसलिए हमें खेजड़ी को एक निश्चित अनुपात में लगाना चाहिए ताकि इसके साथ में लगाने वाली एकवर्षीय फसलों की उत्पादकता पर गलत प्रभाव ना हों । एक शोध में यह निष्कर्ष निकला गया है कि अगर हम बिना खेजड़ी के फसल उगाते है तों मृदा के उर्वरा स्टार में कमी आती है वहीं अगर खेजड़ी के साथ फसल लगाई जाती है तों मृदा में प्राथमिक और सूक्ष्म तत्वों की मात्रा में वृद्धि होती है (सारणी 6)। जिससे खेत की उर्वरता भी बनी रहती है और मरुस्थलीकरण को रोकने में भी मदद मिलती है अतः किसानों को हमेशा खेजड़ी के साथ उपयुक्त फसलों का चुनाव करके लगाना चाहिए ताकि आय बढ सकें ।

जैसे–जैसे खेजड़ी वृक्ष से दूर जाते हैं वैसे–वैसे फसल की उत्पादकता पर प्रभाव पड़ता है, खेजड़ी वृक्ष के नीचे, पौधों की संख्या, पौधों की ऊंचाई, पौधे प्रति पौधे और फली की लंबाई अधिक होती है क्योंकि खेजड़ी दलहन वाली फसलों के साथ नमी और प्रकाश के लिए प्रतियोगिता नहीं होती है, एकवर्षीय फसलें उपरी सतह से नमी और पोषक तत्व ग्रहण करती है वहीं खेजड़ी निचली सतह से पोषक तत्व और नमी लेती है जिससे फसलों के साथ प्रतियोगिता नही होती और दोनों को एक साथ आसानी से लिया जा सकता है खेजड़ी गर्म शुष्क वातावरण में छाया के साथ मिट्टी की उर्वरता बढ़ता है और छाया से सकारात्मक प्रभाव होता है।

सारणी 5 प्राथमिक और सूक्ष्म मृदा में उपलब्धता पर खेजड़ी का प्रभाव

	गहराई (सेमी)	N	P	K	Zn	Mn	Cu	Fe
		(किग्रा प्रति है.)			पी पी एम			
खेजड़ी के साथ	0–15	250	22.4	633	0.60	10.0	0.50	3.3
	15–30	193	10.0	325	2.28	11.7	1.28	2.4
बिना खेजड़ी के	0–15	203	7.7	370	0.20	6.9	0.26	3.0
	15–30	196	4.0	235	0.08	8.1	0.50	4.0

तिवारी और सिंह (2006)

सारणी 6 विभिन्न वृक्षों के नीचे मृदा में पाए सूक्ष्म जीवों की संख्या पर प्रभाव

	जीवाणु ($Nx10^5$)	फंफूद ($Nx10^5$)	एक्टीनोमसीटीज ($Nx10^5$)	नत्रजन जीवाणु(MPN)
प्रोसोपिस सिनेरेरीआ	32	29	16	1100
शीशम	22	18	11	1300
टेकमेला उण्डुलाता	25	20	12	900
प्रोसोपिस जूलीफ्लोरा	20	16	10	700

तिवारी और सिंह (2006)

मृदा में बहुत प्रकार के सूक्ष्म जीव पाए जाते हैं जो कि मिटटी की उर्वरा शक्ति को प्रभावित करते हैं, शोधकर्ताओं के अनुसार खेजड़ी एक ऐसा वृक्ष है जिसको खेत में लगाने से मृदा में पाए जाने वाले लाभदायक सूक्ष्म जीवों की संख्या में वृद्धि होती है (सारणी 7), जिससे खेत की उर्वरता शक्ति और उत्पादकता बढती है।

उपरोक्त सभी अध्ययन से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि खेजड़ी अपने आसपास की फसलों को उपयुक्त पारिस्थितिकीय स्थितियां प्रदान करता है जिससे शुष्क क्षेत्रों में होने वाली फसलों की वृद्धि और उत्पादकता पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है। क्योंकि खेजड़ी से फसलों में फलियों की संख्या, चारे वाली फसलों में कल्लों की संख्या में बढ़वार होती है, इसके अलावा इस वृक्ष से ग्रामीण को विभिन्न उपयोगी उत्पाद प्राप्त होते है इसलिए शुष्क क्षेत्रों में टिकाऊ खेती करने के लिए, इस बहुउद्देशीय वृक्ष प्रजाति को कृषि–वानिकी प्रथाओं में संरक्षित और बढ़ावा दिया जाना चाहिए और ज्यादा से ज्यादा संख्या में लगाना चाहिए ताकि फसलों की उत्पादकता के साथ साथ मरुस्थल के प्रसार को रोकने में भी मदद मिल सके। अतः थार मरुस्थल में किसान और पशुपालक खेजड़ी को लगाकर दलहन फसलों में उत्पादकता वृद्धि के साथ–साथ चारे का भी उत्पादन ले सकते हैं जिससे कि यहाँ के किसानों की आय बढाने में खेजड़ी एक महती भूमिका अदा कर सकता है।

भेड़–बकरी पालन आधारित समन्वित कृषि प्रणाली

एल.आर. गुर्जर, रंगलाल मीणा, बनवारी लाल एवं एस.सी. शर्मा

भारत में जनसंख्या वृद्धि एक विकट समस्या है, जहाँ एक ओर कृषि जोत का आकार घटता जा रहा है और खेती विहीन एवं सीमांत किसानों की संख्या बढ़ती जा रही है। दूसरी और सीमित संसाधनों के रहते किसान को आवश्यक लग रहा है कि कृषि से अधिक से अधिक उपज प्राप्त हो सके इसलिए रसायनों का उपयोग वह बढ़ाता जा रहा है जिससे पर्यावरण प्रदूषित हो रहा है। सीमांत किसान खेती से केवल अपने स्वयं के परिवार का पेट पालन कर अपनी आजीविका चलाता है। साथ ही देश में खाद्य एवं पौष्टिक आहार सुरक्षा की जिम्मेदारी छोटे एवं बड़े जोत के किसानों के ऊपर आ गयी है। ग्रामीण क्षेत्रों में खुशहाली लाने के लिये खेती की टिकाऊ प्रणालियों के साथ उन्हें सही दिशा में विकसित होने का मौका देना अत्यन्त आवश्यक है। मौसम की विषमताऐं जैसे सूखा, बाढ़, वर्षा की अनिश्चितता एवं अन्य प्राकृतिक आपदायें भी किसानों की आजीविका के लिए बड़ी समस्या बनकर समय–समय पर आती रहती है। किसानों के इस जौखिम भरे व्यवसाय में उनकी आमदनी को सुनिश्चित करने के लिए इसी क्षेत्र में रोजगार के कई अवसरों में बढ़ोतरी करने की आवश्यकता है। पशुपालन, बागवानी, फलोत्पादन, सब्जी/औषधीय और सुगन्धित पादप उत्पादन, फूल उत्पादन, मधुमक्खी पालन, मशरूम उत्पादन जैसे उद्यमों की सख्त आवश्यकता है।

वर्तमान समय में किसानों के लिए कृषि उत्पादों को उचित मूल्य पर विपणन करना एक समस्या बनी हुई है तथा बिचोलिये उनके उत्पादों को औने पौने दामों पर ही खरीद रहे हैं, सरकारों द्वारा बिचौलियों को रोकने के लिए समय–समय पर प्रयास किये जा रहे हैं। जैसे भारत सरकार ने 14 अप्रेल 2016 में 23 मण्डियों को पायलट प्रोजेक्ट के तहत ई–नाम (राष्ट्रीय कृषि बाजार) से जोड़ा ताकि पूरे देश में कृषि उत्पादों का एक भाव मिले एवं किसानों को जानकारी हो सके कि फसलों का भाव मण्डियों में क्या चल रहा है। गुणवत्ता युक्त उत्पादों का अच्छा भाव मिले, समय पर ऑनलाईन भुगतान हो सके इत्यादि प्रयास भारत सरकार कर रही है। समन्वित कृषि प्रणाली न्यूनतम प्रतिस्पर्धा और अधिकतम पूरकता के सिद्धान्त पर आधारित है जिसमें कृषि अर्थशास्त्रीय प्रबन्धन के परिस्कृत नियमों का उपयोग करते हुए किसानों की आमदनी, परिवारिक पोषण के स्तर और परिस्थितिकीय प्रणाली समबन्धित सेवाओं का टिकाऊ और पर्यावरण की दृष्टि से अनुकूल विकास करने का लक्ष्य रखा जाता है। जैव विविधता का संरक्षण, फसल/खेती की प्रणाली में विविधता और अधिकतम मात्रा में पुनर्चक्रण कृषि के प्रणालीगत दृष्टिकोण का आधार है। इस प्रणाली के तहत कृषि एवं पशुपालन सम्बन्धित विभिन्न गतिविधियों को सम्मिलित कर खेती को आर्थिक रूप से व्यावहारिक बनाने के साथ किसानों की शुद्ध आय को बढ़ाया जा सकता है। लगभग 80 फीसदी किसान नियमित तौर पर खेती के साथ मवेशी भी रखते है जिनमें गाय एवं भैंसों की बहुतायत होती है। मवेशी पालने से किसानों का कृषि से सम्बन्धित जोखिम तो कम होता ही है उसके अलावा उनकी आय और पोषण स्तर में भी बढ़ोतरी होती है। योजनागत इस प्रणाली के तहत एक अवयव के अपशिष्टों, अनुत्पादों और अनुपयोगी जैव ईंधन का इस तरह से पुनर्चक्रण किया जाता है कि वह दूसरे अवयव के लिए प्रथम श्रोत के तोर पर इस्तेमाल हो जाता है। जिससे लागत में कमी आती है और उत्पादकता एवं लाभदायकता में बढ़ोतरी होती है। समन्वित कृषि प्रणाली को बढ़ावा देने के लिए राष्ट्रीय सतत् कृषि मिशन (एन.एम.एस.ए.) के तहत सरकार किसानों को इस प्रणाली को अपनाने के लिए प्रोत्साहन दे रही है। ग्रामीण क्षेत्रों में अपने आर्थिक संकट से निपटने में एकीकृत खेती की भूमिका काफी अहम हो सकती है और इसको बढ़ावा देने के लिए नई दिल्ली में गणतंत्र दिवस परेड में भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद की तरफ से पेश की गई झांकी में भी एकीकृत खेती प्रणाली से सम्बन्धित विभिन्न पहलुओं और उनके लाभों को प्रदर्शित किया गया था। राज्य सरकारों और कृषि विकास में लगे विभिन्न संस्थानों को भी इस तरह की पर्यावरण–अनुकूल और लाभप्रद कृषि प्रणालियों को प्रोत्साहन देना चाहिए। ताकि किसानों को अपनी जमीन से अधिकतम लाभ प्राप्त हो सके।

भेड़–बकरी पालन आधारित प्रणाली

समन्वित कृषि प्रणाली के लिए खेत का आकार अधिक मायने नहीं रखता। सच तो यह है कि इस तरह की प्रणाली छोटे एवं सीमांत किसानों के लिए कहीं अधिक कारगर साबित होती है। देश भर में भूमिहीन एवं सीमांत किसानों की संख्या बढ़ने से इस प्रणाली की उपयोगिता और बढ़ गयी है। शुष्क एवं अर्द्धशुष्क क्षेत्रों में खेती पूर्णतया वर्षा पर आधारित रहती है। राजस्थान जैसे राज्य में तो वर्षा की अधिक अनिश्चितता एवं अकालों की लगातार मार से किसानों की आजीविका के लिए भी संकट खड़ा रहता है।

ऐसी परिस्थितियों में खेती के साथ–साथ भेड़ एवं बकरी पालन किसानों को पूरे साल आजीविका चलाने एवं उनकी आय में वृद्धि का माध्यम बन सकता है। भेड़–बकरी को ऐ.टी.एम. के नाम से जाना जाता है जिसका अभिप्राय किसी भी समय पैसा और किसी भी समय दूध से जोड़ा जाता है और यह वाक्य इन दोनों जानवरों के लिए अधिक उपयुक्त बैठता है। प्राकृतिक संसाधनों की कमी वाले राज्यों में भेड़–बकरी पालन का प्रचलन बहुत अधिक बढ़ रहा है जिसमें नौजवान इस व्यवसाय को अपनाकर अपनी पढ़ाई के साथ–साथ अपनी आजीविका भी भली भाँति चला रहे हैं। गाँवों में युवा पीढ़ी के कुछ लोग इस व्यवसाय में अपनी रूचि रखने लगे हैं जो तीन माह एवं इससे कम उम्र के बकरी एवं भेड़ के बच्चे खरीदकर उनकी 4–6 महिने तक खिलाई–पिलाई कर एक समय विशेष पर उनको बेचते हैं जिससे उनको अच्छा मुनाफा प्राप्त हो रहा है। ग्रामीण परिवेश में वर्तमान में देखा जाय तो एक निष्कर्ष निकल कर आ रहा है कि जो सामान्य एवं छोटे किसान खेती के साथ भेड़–बकरी पालन कर रहे हैं वो उनके समकक्ष या बड़े जोत के आकार के किसानों से आर्थिक स्थिति में मजबूत एवं आत्मविश्वास से भरपूर नजर आ रहे हैं।

भेड़ एवं बकरी बहुउपयोगी जानवर हैं जिनसे मांस, मेंगनी, ऊन, दूध आदि उत्पाद मुख्यतया प्राप्त होते हैं। इस व्यवसाय के लिए अधिक प्राकृतिक एवं आर्थिक संसाधनों की आवश्यकता नही होती है। खेती से प्राप्त विभिन्न उत्पादों, खेत एवं चरागाहों में उगने वाले पेड़–पौधों, झाड़ियों एवं घासों से ये अपना पेट भर लेती हैं जिससे किसानों की प्रथम श्रोत लागत न के बराबर लगती है। प्रायः गाँवों में देखा गया है कि ज्यादातर भेड़ बकरी पालक अपने जानवरों को शून्य पोषण पदार्थ इन्पुट लागत पर ही पालते हैं। अकाल एवं सूखे की स्थिति में भी वे चारा दाना खरीद के नहीं लाते हैं अपितू उनको चारे की उपलब्धता वाले स्थानों पर निष्क्रमण पर ले जाकर उनका पालन करते हैं। भेड़–बकरी से प्राप्त मेंगनी खाद के रूप में एवं पोषक तत्वों की उपलब्धता के कारण जमीन को उपजाऊ बनाने में कारगर साबित होती है। बकरी से प्राप्त मिंगनी अन्य पशुओं से प्राप्त गोबर की खाद से अधिक लम्बे समय तक जमीन को उपजाऊ बनाये रखने में सहायक होती है।

हिंदी हमारे राष्ट्र की अभिव्यक्ति का सरलतम स्त्रोता है:
सुमित्रानंदन पंत

बकरी के दूध की रासायनिक संरचना, पोषण एवं औषधीयगुण

अमर सिंह मीना[1,2], राजीव कुमार[1], एस. एस. मिश्रा[1], अरूण कुमार[1], ध्रुव मालाकार[2] एवं एस. डे[2]

सामान्यतया बकरी दो उदेश्य के लिए पाला जाने वाला छोटा रोमन्थी पशुधन है। जिससे मांस एवं दूध प्राप्त किया जाता है। बकरी से इनके अलावा फाइबर (पशमीना बकरी), चमड़ा एवं खाद भी प्राप्त होता है। बिना खर्च (जीरो इनफुट) के द्वारा ज्यादातर किसानों द्वारा बकरी का पालन देश में किया जाता है। बकरी कम गुणवता का रेशेदार चारा, खरपतवार, फसल के अवशेष, पेड की पत्तियों, झाडियों आदि को खाकर उनसे अच्छी गुणवता की पशुधन प्रोटीन जैसे मांस एवं दूध में परिवर्तित करती है। बकरी का पालन भारत की खाद्य तथा आर्थिक सुरक्षा के लिए महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। बकरी एवं भेड़ को जीवित रेफ्रीजेरटर के नाम से भी जाना जाता है। क्योकि इनका दूध का दोहन किसी भी समय दिन में जरूरत के समय निकाला जा सकता है। विश्व में 1101 मिलियन बकरी की संख्या में से भारत के पास 135.20 मिलियन (13.37 प्रतिशत) बकरी की संख्या हैं। देश की इकोनोमी में बकरी पालन का व्यवसाय 16,550 करोड रूपयें प्रतिवर्ष योगदान करता है। जिसमें 10,800 मिलियन रूपये मांस से, 4500 मिलियन दूध से, 200 मिलियन बालों से, 1050 मिलियन खाद के द्वारा प्राप्त होता है। भारत में प्रति व्यक्ति पशुधन आधारित प्रोटीन की उपलब्धता 10 ग्राम ही है। जबकि विश्व के औसत मानक के अनुसार 29 ग्राम होनी चाहिए। भारत की खाद्य सुरक्षा के लिए पशुधन प्रोटीन की उपलब्धता को देश की सामाजिक–आर्थिक स्थिति के लिए बढाना जरूरी है इसके लिए पशुधन आधारित प्रोटीन के स्त्रोत के लिए बकरी का दूध एक अच्छा विकल्प है। क्योंकि शाकाहारी भोजन वालों के लिए पशुधन का दूध ही एकमात्र प्रोटीन का स्त्रोत है।

भारत में 62 प्रतिशत बकरी का पालन सीमान्त तथा भूमिहीन किसानों के द्वारा किया जाता हैं। 135 मिलियन बकरियों की आबादी के साथ विश्व में भारत का दूसरा स्थान हैं। देश की 19 वीं पशुधन जनगणना के अनुसार 26.40 प्रतिशत पशुधन की आबादी बकरियों की है। गाय एवं भैंस के बाद बकरियों का दूध पैदावार में तीसरा स्थान है। भारत देश में कुल दूध उत्पादन का 3. 4 प्रतिशत दूध बकरियों से प्राप्त होता है। भारत में 28 बकरी की नस्ल मिलती हैं। जिनमें से जखराना, सिरोही तथा मारवाडी नस्ल की बकरी राजस्थान में पाई जाती हैं। उपरोक्त तीनों नस्ल की बकरी को मांस एवम दूध के लिए पाला जाता हैं। जखराना नस्ल की बकरी इनमें से सबसे ज्यादा दूध देने की क्षमता है। जिससे औसतन 3 लीटर दूध प्रतिदिन प्राप्त किया जा सकता है। इसलिए जखराना बकरी को डेयरी नस्ल के रूप में जाना जाता है। सिरोही तथा मारवाडी नस्ल से भी 1–2 लीटर दूध प्रतिदिन प्राप्त हो जाता है। हमारे देश में बकरियों से औसतन 0.45 किलो दूध प्रतिदिन प्राप्त होता हैं। क्योंकि अभी दूध उत्पादन के लिए बकरी पालन में आनुवांशिक एवं पोषण सुधार करना बहुत ही आवश्यक है। भेड़ तथा बकरी पालन को गरीब के एटीएम के रूप में भी आजकल बहुत प्रसिद्धि मिली है क्योंकि किसी भी समय मांस,दूध तथा रूपये प्राप्त किया जा सकते हैं। बकरी के दूध में भी अन्य पशुधन के समान ही रासायनिक गुण पाये जाते हैं। (सारणी–1)।

सारणी :- गाय, बकरी तथा भेड़ के दूध की रासायनिक संरचना

पैरामीटर	गाय का दूध	बकरी का दूध	भेड़ का दूध
वसा (ग्रम/ 100)	3.3	3.8	5.9
लेक्टोज (ग्रम/100)	4.7	4.1	4.8
प्रोटीन (ग्रम/100)	3.4	3.7	5.5
केजीन (ग्रम/100)	3.0	2.4	4.7
एल्फा एस–1 केजीन %	39.7	5.6	6.7
एल्फा एस–2 केजीन %	10.3	19.2	27.8
बीटा– केजीन %	32.7	54.8	61.6
काप्पा केजीन %	11.6	20.4	8.9

खनिज (मिलीग्रम / 100)			
Ca	112	130	197.5
Mg	11	14.5	19.5
P	91	109	141.5
Na	145	185.5	138.0
Se	1.8	1.67	1.7
Mn	6.0	8.0	7.15
विटामिन्स			
विटामिन ए (hgRE / 100) (माइक्रोग्राम / 100)	37.0	54.32	64

(स्श्रोत बल्ताजार एट. आल, 2017)

बकरी के दूध की रासायनिक संरचना

गाय, बकरी तथा भेड़ की दूध की रासायनिक संरचना में भिन्नता पाई जाती है। मानव तथा पशुधन में जन्म के बाद नये बच्चों के लिए दूध पोषण का पहला स्त्रोत है। दूध स्तनधारी जीवों के स्तन ग्रन्थि से स्त्रावित होता है। जिसकी रासायनिक एवं भौतिक संरचना जाति से जाति विभिन्न होती है। दूध एक पानी तथा तेल का मिश्रण जिसमें वसा, प्रोटीन्स, लेक्टोज, खनिज एन्जाइम, हारमोन, प्रतिरक्षी अणु, विटामिन्स तथा कोशिका होती है। दूध के प्रोटीन को सामान्यतया दो भाग में बांटा जाता है। इसमें अघुलनशील प्रोटीन केजीन कहलाती हैं तथा दूसरी व्हे प्रोटीन्स जो घुलनशील प्रोटीन हैं। केजीन प्रोटीन में एल्फा एस–1, एल्फा एस–2, बीटा तथा काप्पा केजीन होती है तथा व्हे प्रोटीन में एल्फा लेक्टोएल्बमिन एवम बीटा लेक्टोजगलाब्लिन होती है। इनके अलवा भी कुछ अन्य प्रोटीन्स भी दूध में उपस्थित होते हैं।

पशुधन की विभिन्न पशुओं की प्रजातियों के दूध की संरचना विभिन्न कारकों से भी प्रभावित होती है। बकरी के दूध के कुछ विशेष गुण होते हैं, जो उसको तकनीकी रूप से गाय के दूध से बेहतर बनाते हैं। जैसे कि वसीय गोलिकाओं का छोटा आकार (180 विरूद्ध 260 नैनोमीटर) के कारण इससे बनने वाले डेयरी उत्पादों की बनावट लचीलापन होता है। एल्फा एस–1 केजीन की कम मात्रा के कारण इससे बनने वाले डेयरी उत्पाद लचीले होते है। इससे बकरी के दूध के डेयरी उत्पादों की पानी ग्रहण करने की क्षमता अधिक हो जाती है एवं उत्पाद में कम चिपचिपापन होता हैं। केजीन प्रोटीन्स की बनावट, संरचना तथा आकार के आधार पर विभिन्न पशुधन के पशुओं के दूध में विभिन्नताएँ मिलती है। इसी प्रकार अन्य खनिज, विटामिन्स तथा प्रोटीन्स में भी अन्तर मिलता है। गाय के दूध की तुलना में बकरी के दूध में कम केजीन प्रोटीन्स, अधिक कैल्सियम, मैग्नीशियम, फास्फोरस, मिलता है। तथा विटामिन्स ए की मात्रा भी ज्यादा होती है। इसलिए गाय के दूध के बाद मानव के लिए पोषण हेतु बकरी का दूध एक अच्छा वैकल्पिक स्त्रोत है।

बकरी के दूध की संरचना में किसी भी प्रकार का बदलाव उसके पोषण, तकनीकी तथा आर्थिक मूल्यों को प्रभावित करता है। जिससे उससे बनने वाले डेयरी उत्पादों की गुणवता भी प्रभावित होती है। गाय की तरह, बकरी के दूध में भी केजीन की चार प्रजातियॉ (एल्फा एस–1, बीटा, एल्फा एस–2 एवं काप्पा) पाई जाती हैं लेकिन इनकी मात्रा गाय के दूध की मात्रा से भिन्न होती है। तथा बीटा केजीन बकरी के दूध में तथा एल्फा एस–1 केजीन गाय के दूध में ज्यादा मिलता है। बकरी के दूध में एल्फा एस–2 केजीन प्रोटीन ज्यादा रहता है लेकिन कुल मात्रा एल्फा एस–1 एवं एस–2 गाय के दूध के एल्फा एस–1 की मात्रा से कम होती है। इसी प्रकार काप्पा केजीन की मात्रा भी बकरी के दूध में ज्यादा होती है। यह उपरोक्त भिन्नता के कारण बकरी के दूध में लचीला दही बनने की गुणवता, अच्छी तरह मानव के लिए पचने वाला, तथा सबसे कम एलर्जीक दूध बच्चों के लिए होता है। दूध की रासायनिक संरचना में भिन्नता जो कि विभिन्न पशुधन के पशुओं तथा एक ही पशु के विभिन्न सदस्यों में होने का कारण उनके जीनोम में पाई जानी वाली केजीन प्रोटीन्स एवम व्हे प्रोटीन्स की जीन में आनुवंशिक बहुरूपता के कारण होती है।

बकरी के दूध की पोषण एवं औषधीय गुण

1. **पाचन-क्षमता** बकरी के दूध में अधिक पाचन युक्त रासायनिक संरचना, क्षारीय बफर क्षमता तथा कुछ मानव पोषण के लिए औषधीय गुण पाये जाते हैं। बकरी का दूध एव उसके उत्पाद मानव के शरीर में गाय के दूध की अपेक्षा ज्यादा पाचनशील हैं। क्योंकि बकरी के कजीन प्रोटीन्स के छोटी गोलिकाओं के कारण इसका मानव के पाचन–तंत्र के एन्जाइम द्वारा अच्छा पाचन किया जाता है तथा एल्फा एस–1 केजीन की कम मात्रा भी मानव के लिए पाचन में ज्यादा मददगार है।

2. **जीवाणुरोधी गुण** बकरी के दूध में लेक्टोपरऑक्सीडेज एन्जाइम की मात्रा विभिन्न रोगकारक जीवाणु (हैजा, टाइफाइड, न्युमोनिया, दस्त तथा भोजन के जहर) की वृद्धि को रोकती है। जिससे उपरोक्त प्रकार के जीवाणु से होने वाले रोगों को नियंत्रित करती है।
3. **दूध की एलर्जी से बचाव** विश्व में करीब कुछ लोगों को गाय तथा उससे निर्मित डेयरी उत्पादों के लेने के बाद एलर्जी अभिक्रिया शरीर में होती है। छोटे बच्चे तथा बूढ़े आदमी को गाय का दूध पाचनशील नहीं हैं इस कारण भी एलर्जीक लक्षण विकसित होते है। इस तरह के मामले में बकरी का दूध एक बढ़िया वैकल्पिक स्त्रोत है। गाय के दूध में एल्फा एस–1 केजीन की अधिक मात्रा के कारण शरीर में इम्यूनोग्लोब्लिन का स्त्राव बढ़ जाता है। जो कि शरीर में एलर्जी के जिम्मेदार कारक का लगातार स्त्राव करवाता है। जबकि बकरी के दूध में कम मात्रा एल्फा एस–1 केजीन तथा अधिक बीटा केजीन एलर्जी अभिक्रिया को कम करते हैं। ऐसे केस में डाक्टर रोगी को बकरी के दूध गाय के दूध की जगह लेने की सलाह देते हैं। इसी प्रकार कुछ लोगों को दूध में उपस्थित लेक्टोज शर्करा से भी सहनशीलता प्रभावित होती है। जो लोग गाय के दूध को लेक्टोज के कारण पाचन नहीं कर पाते हैं वे बकरी के दूध को आसानी से पचा लेते हैं।
4. **बकरी के दूध के औषधीय गुण** बकरी, भेड़, ऊँट, घोड़ी, गधी तथा अन्य पहाडी पशुओं में दूध की पैदावार भैंस एवं गाय से बहुत कम होती है। विश्व के विभिन्न देशों में ऐसे वैज्ञानिक शोध प्रमाण मिले हैं कि छोटे दुधारू पशुओं के दूध तथा उनसे निर्मित डेयरी उत्पाद का भोजन में नियमित सेवन से बहुत सी आधुनिक जीवनशैली की बीमारियॉ (डायबिटिज, कैंसर, हृदय संबंधित विकार, पेट, तथा प्रतिरक्षी तंत्र की क्रियाशीलता) की होने की दर कम होती है। जो देश अपनी दैनिक जरूरत के लिए छोटे दुधारू पशुओं के दूध तथा उसके उत्पाद ही अपने भोजन में लेते हैं। वहां विश्व के अन्य देशों के मुकाबले उपरोक्त रोगों की दर तथा आने की सम्भावना बहुत कम हो जाती है। भारत में भी डेंगू बुखार के समय गांवों तथा शहरों में बकरी का दूध रोगी को देते हैं। डेंगू के बुखार के समय बकरी के दूध की कीमत 800–1000 रूपये किलो देश के बडे–बडे शहरों में हो जाती है तथा उस समय बकरी के शुद्ध दूध की मांग अप्रत्याशित बढ़ जाती है। भविष्य में बकरी के दूध से बहुत से डेयरी उत्पादों के बनने की संभ्भावनाएं हैं। इसलिए बकरी के दूध की मुख्य प्रोटीन्स की विभिन्नताओं की पहचान करना जरूरी है। जिससे उसके दूध को औषधीय गुण के रूप में उपयोग लाया जा सकें।

सारांश

बकरी के दूध का अच्छी तरह पाचन होने के कारण, गुणकारी वसीय अम्लों की मौजूदगी तथा विभिन्न प्रकार के जैव– क्रियाशील छोटे पेप्टाइडों के उपस्थित होने के कारण अनेकों विकारों के बचाव एवं उपचार में उपयोग किया जा सकता है। बकरी के दूध में मौजूद केसीन, व्हे प्रोटीन्स में से मानव के पाचन तंत्र के एन्जाइम से 20–100 अमीनो अम्ल लम्बे पेप्टाइड बनते हैं। इन छोटे पेप्टाइड को जैव–क्रियाशील पेप्टाइड कहते हैं। क्योंकि इनमें मानव के स्वास्थ्य के लिए विभिन्न चिकित्सीय लाभकारी गुण पाये जाते हैं। वैज्ञानिक अध्ययन के द्वारा मॉडल जीव पर शोध के परिणाम यह बताते हैं कि बकरी का दूध तथा उससे बनने वाले डेयरी उत्पादों से आधुनिक जीवन–शैली की विभिन्न रोगों को नियंत्रित करनी की क्षमता है। अतः भविष्य में बकरी के दूध में उपस्थित विविभन्न प्रोटीनों में मौजूद जैव क्रियाशील छोटे पेप्टाइड का पता लगाना जरूरी है। साथ ही उनका मानव स्वास्थ्य के लिए विभिन्न रोगों के बचाव के लिए क्रियाशीलता का भी परीक्षण मॉडल जीव– जन्तु एवं मानव पर करना जरूरी है। इसी प्रकार हमें बकरी के दूध से भविष्य में विभिन्न औषधीय गुणों के डेयरी उत्पादों को विकसित करने में सफलता मिलेगी। यह बकरी पालन व्यवसाय को अधिक मुनाफा वाला व्यवसाय बनाने में सहायक सिद्ध होगी।

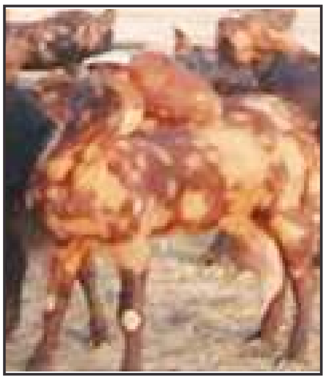

चित्रः–1 सिराही, जखराना एवं मारवड़ी नस्ल की बकरी

वस्त्रों में प्राकृतिक रंगों का महत्व

सीको जोस, लता सामन्त एवं डी.बी. शाक्यवार

मनुष्यों को हमेशा से ही रंगों के प्रति आकर्षण रहा है। प्राचीन काल में शिल्पों को रंगने के लिए रंगकार प्रकृति के विभिन्न स्त्रोतों का इस्तेमाल करते थे, जिन्हें वो प्राकृतिक रंग कहते थे। सामान्यतःरंगकार स्थानीय स्त्रोतों जैसे –सब्जियों, पेड़ की छाल, फूल, फल, कीडों इत्यादि से रंग प्राप्त करते थे। प्राकृतिक रंगों से रंगने का प्रचलन कांस्ययुग से आरम्भ हुआ था। प्राचीन साहित्य में उल्लेख किया गया है कि प्राकृतिक रंगों से रंगा जाने वालालिनेन का कपड़ा ईजिपिशियन ममीज को लपेटने में उपयोग किया जाता था।

इंडिगो के पौधे से पाया जाने वाला नीला रंग भारत में 4000 हजार वर्ष पूर्व से जाना जाता है। सन् 1920 के दौरान, कृत्रिम रंग के पदार्थ एवं रंग, बाजार में बहुतायत मात्रा में रंगाई और कपड़ों के उद्योग की पूर्ति करने लगे, कृत्रिम रंगों के अत्यधिक उपयोग से प्राकृतिक रंगों का इस्तेमाल कम होने लगा, बाद में यह ज्ञात हुआ कि संबंधित कृत्रिम रंगों में चर्म रोग उत्पन्न करने वाले पदार्थ मौजूद हैं, जिसका प्रभाव मानव जीवन पर पड़ने लगा और विभिन्न प्रकार के त्वचारोग उत्पन्न होने लगे। इन सभी दुष्प्रभावों को ध्यान में रखते हुए, सितम्बर, 1994 में जर्मनी ने एजोडाइज से वस्त्र रंगाई के इस्तेमाल पर प्रतिबंध लगा दिया और यूरोपियन संघ ने उन सभी कृत्रिम रंगों को प्रतिबंधितकर दिया जो चर्म रोग का कारक बनते थे। यूरोपियन संघ ने मानक प्रमाणित करने वाली संस्था, लेबलिंग के कार्य शुरू किये ताकि प्रतिबन्धित रंगों का उपयोग न किया जा सके। आज कोई भी निर्यात उद्योग वस्त्र खरीददारों की मांग आपूर्तिकर्ता से पर्यावरण हितैषी एक मानक प्रमाणा–पत्र की मांग करते हैं, जो प्रतिबंधित रंगों एवं रसायनों से मुक्त हों। भूमण्डलीय ऊष्मीकरण के कारण विश्व की विभिन्न संस्थाएं वस्त्र उद्योगों को पर्यावरण के अनुकूल प्राकृतिक संसाधन उपलब्ध कराने पर जोर दे रही है। इस जागरूकता का अभिप्राय है कि प्राकृतिक रंग जैव अपक्रमण और पर्यावरण के अनुकूल एवं एलर्जी रहित हो।

प्राकृतिक रंग क्यों ?

धारणीय परिधान लोकप्रिय हो रहे हैं, क्योंकि वैश्विक स्तर पर ये संस्थान पर्यावरण के प्रति जागरूकता बढ़ाने में अहम भूमिका रखतेहैं। वस्त्र उद्योग पर्यावरण प्रदूषण में उच्च स्थान पर है, इससे लाखों टन अपशिष्ट पदार्थ रोजाना नदियों, जलाशयों व सागर और भूमि में मिश्रित हो रहा है।

दूसरे पहलुओं पर गौर करें तो ग्राहक कपड़ों के कार्यात्मक गुणों को लेकर काफी जागरूक हैं, जैसे पराबैंगनी किरणों और रोगाणुरोधी सुरक्षा प्रदान करने वाले कपड़ों को प्राथमिकता देना। पराबैंगनी किरणों का त्वचा के संपर्क में आने से, समय से पहले त्वचा की उम्र बढ़ने और एलर्जी हो जाती है जिससे त्वचा रोग हो जाता है। शरीर को कपड़े से ढ़क कर पराबैंगनी किरणों से होने वाले नुकसान से बचा जा सकता है। सूती वस्त्रों की मांग काफी ज्यादा है। हालांकि इस कपड़े में पराबैंगनी किरणों की प्रतिरोधक क्षमता काफी कम होती है, इसलिए इसको प्राकृतिक रंजकों से रंग किया जाता है क्योंकि इसमें अलग अलग सक्रिय यौगिक होते हैं जैसे सपोनिन, फ्लावोनोइड, टैनिन, पॉली फिनोल इत्यादि जो कि सूर्य से निकलने वाली पराबैगनी किरणों से बचाव करते हैं।

आज के उन्नतिशील युग में लोग एक अच्छी जीवन शैली व अच्छे वातावरण के प्रति सचेत हैं।, साथ ही साथ उनकी रूचि रोगाणुरोधी तकनीकों के प्रति बढ़ती जा रही है। हमारी प्रकृति रोगाणुरोधी पदार्थों का अच्छा स्त्रोत है। रोगाणुरोधी पदार्थ तीन प्रकार के होते हैं प्राकृतिक, अर्द्ध कृत्रिम एवं कृत्रिम जो कि बाजार में व्यावसायिक रूप में उपलब्ध हैं, लेकिन पिछले कुछ दशकों से लोग अपने स्वास्थ्य व पर्यावरण के प्रति जागरूक हुयें हैं जिसके कारण प्राकृतिक रोगाणुरोधी पदार्थ की मांग बढ़ती जा रही है। प्राकृतिक रोगाणुरोधी पदार्थ का प्रकृति और मनुष्य पर कोई दुष्प्रभाव नहीं पड़ता है। हमारी प्रकृति में कई ऐसे प्राकृतिक रोगाणुरोधी पदार्थ पाए जाते हैं जिनका उपयोग वस्त्र बनाने वाले रेशों में होने लगा है। एलोवेरा, तुलसी की पत्तियाँ, नीम, हल्दी, सफेदा का तेल आदि रोगाणुरोधी गुणों से भरपूर होते हैं, जिनका उपयोग वस्त्र उद्योग में बहुतायत मात्रा में किया जाता है। ऐसे प्राकृतिक गुणों से भरपूर रोगाणुरोधी पदार्थों का उपयोग करना मनुष्य की त्वचा तथा पर्यावरण के लिए बहुत फायेदमंद है, इन रसायनों से होने वाली खाज–खुजली व अन्य त्वचा सम्बन्धित रोगों से निजात मिल जाती है।

प्राकृतिक रंगों का निष्कर्षण ?

प्राकृतिक रंगों को रखने वाले पौधों या पुष्पों में रंग की मात्रा बहुत कम यानी 10–20 प्रतिशत तक पायी जाती है। इसके अलावा अन्य पदार्थ जैसे कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन व टेनिन पाया जाता है। अतः रंगों के निष्कषर्ण के पूर्व पदार्थ की प्रकृति व घुलनशीलता की विस्तृत जानकारी प्राप्त करना आवश्यक होता है।

पानी द्वारा रंग का निष्कषर्ण

मुख्य प्राकृतिक स्त्रोतो से प्राप्त होने वाले रंग पानी में घुलनशील होते हैं। रंग को प्राप्त करने वाले पदार्थ को पहले पाउडर के रूप में पीसते है, उसके उपरान्त रातभर पानी में घुल जाते हैं। इसके उपरान्त इसको 45–60 मिनट तक उबालते हैं, उबालने के बाद विलयन को ठण्डा कर दो बार फिल्टर पेपर से छानते है। छानने के बाद साफ रंग का विलयन प्राप्त होता है। यह विधि सबसे आसान एवं किफायती है, जिसे अधिकतर व्यवहारिक उपयोग किया जाता है। मेहन्दी, मडार, यलोरूट, कैटचू, अखरोट के छिलकों आदि को रातभर पानी में सोखने के उपरान्त एक घण्टे तक उबालते हैं, बाद में ठण्डा कर छान लेते है। इस प्रकार निर्मित विलयन कपड़े की रंगाई करने में उपयोग लाते हैं।

कार्बनिक विलायक द्वारा निष्कर्षण

कुछ विशेष पौधों से प्राप्त पदार्थों द्वारा रंग निकालने के लिये कार्बनिक विलेयक उपयोग में लाते हैं। इनमें एथेनॉल प्रमुख है। क्योंकि इन पदार्थों से पानी द्वारा रंग निकलना कठिन होता है तथा रंग वाले पदार्थ पानी में विलेय नहीं होते हैं। इस विधि में प्राकृतिक रंग प्राप्त होने वाले पदार्थ को एथेनॉल में घोलते हैं। यह विधि पानी में रंग निकालने की विधि से अधिक उत्पादकता देती है, लेकिन विलायक मंहगा होने के कारण व्यवहारिक दृष्टिकोण से महंगी पड़ती है। इस विधि में पदार्थ के पाउडर को कार्बनिक विलायक में डालकर हल्के तापमान पर उबालते हैं। उबालते समय बर्तन ढका होना चाहिए। लाख व रतन जोति रंजक विलायक विधि द्वारा निष्कर्षण किया जाता है।

चने के छिलके-प्राकृतिक रंग का स्त्रोत

प्राकृतिक रंग का पाउडर

पानी द्वारा रंग का निष्कषर्ण

रंगों को पक्का करने की विधि

प्राकृतिक स्त्रोतों से प्राप्त अधिकांश रंगों की सूती कपड़े को रंगाई करने की क्षमता कम होती है। इस कारण सूती/ऊनी कपड़े से अधिकांश रंग धुलाई के समय निकल जाता है। इस प्रकार के रंग को कपड़े पर पक्का करने के लिये मोरडेन्ट का उपयोग किया जाता है। मोरडेन्ट मुख्य रूप से धातु आधारित होते है। जैसे फेरस सल्फेट, कॉपर–सल्फेट, जिंक एसीटेट, एलम आदि प्रमुख हैं। उक्त लवण कपड़े (कपास/ऊन) के अणु के साथ बन्ध बनाते हैं, तथा साथ में रंग के अणुओं के साथ भी सन्धि कर लेते हैं। इस प्रकार मोरडेन्ट सेतु का कार्य करते हैं। एक स्त्रोत से प्राप्त प्राकृतिक रंग विभिन्न मोरडेन्ट से अलग–अलग रंग प्रदान करता है।

प्राकृतिक रंगो से रंगाई

ऊनी वस्त्रों की प्राकृतिक रंग से आसानी से रंगाई कर सकते हैं,सूती कपड़े की प्राकृतिक रंगों से रंगाई करना कठिन होता है। रंगाई के दौरान कपड़े व पानी का अनुपात सामान्यतः (1:30) रखा जाता है। प्राकृतिक रंगो से ऊनी कपड़े पर की रंगाई 90 ^{o}C पर 30 मिनट तक करते है। रंगाई के उपरान्त कपड़े की साबुनीकरण करते हैं। इस प्रक्रिया में उदासीन 2 ग्राम/लीटर डिटरजेन्ट को 70^{o}C तापमान पर 30 मिनट तक धोया जाता है। इसके उपरान्त कपड़े को ठण्डे पानी में अच्छी तरह से धोकर सुखा लेते हैं।

संस्थान में ऊनी वस्त्रों का रंगों से रंगाई का कार्य

वस्त्र निर्माण एवं वस्त्र रसायन विभाग द्वारा विगत दशक के दौरान ऊनी कपड़े को प्राकृतिक रंग से रंगाई के क्षेत्र में महत्वपूर्ण कार्य किया है। इस क्षेत्र में प्राकृतिक रंगों के विभिन्न स्त्रोतों जैसे – मडार, सफेदा, मूंगफली की बारीक सतह, अनार का छिलका, प्याज का छिलका, अखरोट की बाहरी सतह आदि से रंगों का निष्कर्षण के उपरान्त ऊनी कपड़े पर विभिन्न तरह के रंगों के अन्य गुणों की पहचान की गयी। इसमें कीड़ा अवरोधी, पराबैंगनी तरंग विरोधी व सूक्ष्म जीव निवारक गुणों का अध्ययन कर पता चला है कि प्राकृतिक स्त्रोतों से प्राप्त रंगों में उपरोक्त गुण भी पाये जाते हैं। उपरोक्त रंगों से सूती, ऊनी व रेशमी कपड़े में पक्के रंगों को प्राप्त किया जा सकता है। अनार के छिलके, केसर के फूल तथा प्याज के छिलकों से निष्कर्षण से प्राप्त रंगों को पश्मीना कपड़े पर भी खूबसूरत रंगों को प्राप्त किया गया। यह रंग पश्मीना पर पक्का रंग प्रदान करने में सफल रहे।

प्राकृतिक रंग से रंगा हुआ वस्त्र

प्राकृतिक रंग से छपा हुआ वस्त्र

सम्भावित समाधान

पूरे विश्व में 97 प्रतिशत कपड़े को कृत्रिम रंगों से रंगा जाता है। इतने बड़े पैमाने पर प्राकृतिक रंग का उपयोग वास्तव में सम्भव नहीं है। प्राकृतिक रंगों द्वारा रंगे हुए वस्त्रों का सीमित व अनुकूलित बाजार है, जो हर जगह मौजूद नहीं है, परन्तु पर्यावरण, स्वास्थ्य व प्रकृति के प्रति बढ़ती जागरूकता ने प्राकृतिक रंगों द्वारा बने कपडों की ओर लोगों का आकर्षण बढाया है। भारत ने लगभग अभी इस क्षेत्र में शुरूआत की है, परन्तु यूरोपीय देशों में इसका आकार लगातार बढता जा रहा है, और एक बड़ा बाजार विकसित हो गया है। कृत्रिम रंगों के उपयोग से बने वस्त्रों की तुलना में प्राकृतिक रंगों वाले वस्त्रों का मूल्य भी ज्यादा होता है परन्तु रंगाई की प्रक्रिया काफी सरल है। इसमें ज्यादा मानवीय श्रम और महंगी तकनीकों की भी आवश्यकता नहीं है। एक रंगाई इकाई छोटी सी जगह में लगाई जा सकती है, इसलिए यह प्रक्रिया लघु उद्योगों व शिल्पकारों के दृश्टिकोण से काफी महत्वपूर्ण है।

सामुदायिक चरागाह भूमि, विकास एवं प्रबन्धन

आर.पी. चतुर्वेदी, सुरेश चन्द्र शर्मा, रंगलाल मीणा, बनवारी लाल एवं ए. साहू

भारतीय ग्रामीण अर्थव्यवस्था में चराई आधारित पशुधन की महत्वपूर्ण भूमिका है। गांव के पशु सामुदायिक चरागाह भूमि पर चरते हैं। यह वह भूमि है जो गांव की पशु संख्या के आधार पर गांव के आस–पास पशु चराई हेतु छोड़ी जाती है। सामुदायिक चरागाह भूमि को कई नामों से जाना जाता है। गोचर, चरागाह, गमाउ या खुला जंगल, गमाउ बीड़, ओरण आदि नाम राजस्थान में प्रचलित हैं। गुजरात में गायरण एवं गोथान और महाराष्ट्र में गोमल नाम से भी जाना जाता है। सामुदायिक चरागाहों का ग्रामीण विकास में अहम योगदान है। इसकी महत्ता इस बात से समझी जा सकती है कि गोचर–भूमि (चरागाह) छोड़ने का शास्त्रों में भी वर्णन किया गया है।

गोप्रचारं यथाशक्ति यो वै त्यजति हेतुना।
दिने दिने ब्रह्मभोज्यं पुण्यं तस्य शताधिकम।।
तस्माद् गवां प्रचारं तू मुक् त्वा स्वर्गात्र हीयते।
यश्छिनत्ति द्रुम पुण्यं गोप्रचारं छिनत्यपि।।
(पद्मपुराण,सृष्टि० ५१।३८–४०)

अर्थात जो मनुष्य गौ के लिए यथाशक्ति गोचरभूमि छोड़ता है, उसको प्रतिदिन सौ से अधिक ब्राह्मण भोजन का पुण्य प्राप्त होता है। गोचर भूमि छोड़ने वाला कोई भी मनुष्य स्वर्ग भ्रष्ट नहीं होता। जो मनुष्य गोचरभूमि रोक लेता है और पवित्र वृक्षों को काट डालता है उसकी इक्कीस पीढ़ी रौरव नरक में गिरती हैं।

शुष्क एवं अर्ध–शुष्क प्रदेशों में पशुधन आजीविका का मुख्य साधन है। वर्षा आधारित इन क्षेत्रों में फसल उत्पादन हमेशा ही जोखिम भरा रहा है। अकाल के समय फसलें नहीं होने से सूखे चारे की समस्या भी भयावह हो जाती है। ऐसे में प्राकृतिक चरागाह भूमि जो कि आज उत्पादन शून्य सी पड़ी है, उसे उन्नत घास से विकसित कर अधिक व पौष्टिक चारा उत्पादन करने पर ही चारे की कमी की समस्या को दूर किया जा सकता है। प्राकृतिक चरागाह भूमि के विकास के तरीकों से पहले यह जानना जरूरी है कि इस प्रकार की भूमि की समस्यायें क्या हैं। सामुदायिक भूमि के प्रबंध की आधारभूत मान्यता यह है कि इन संसाधनों पर निकटतम रूप से निर्भर लोग इन्हें सुधारने, इनकी रक्षा करने और इनका सही उपयोग करने की क्षमता का अधिकार और दायित्व रखते हैं। यह कार्य स्थानीय समुदाय के लिए स्वाभाविक है। इसलिए सामुदायिक चरागाह भूमि का प्रबंध नैतिक मूल्यों एवं सामाजिक व्यवस्था को ध्यान में रख कर ही किया जाता है। सामूहिक वन और चारागाह इन समुदायों के जीवनस्रोत और आधार हैं। ये क्षेत्र आसपास के गांवों का पर्यावरणीय संतुलन बनाए रखते हैं। स्थानीय कृषि की उत्पादकता बनाए रखने के लिए जल, खाद और चारा उपलब्ध कराते हैं। मूल्यवान वनस्पति के भंडार और स्वच्छ जल के उद्‌गम स्थान होने के कारण सामूहिक वन और चारागाहों को अक्सर पवित्र और पूज्य स्थान मानने की परंपरा है।

भारत में सामुदायिक भूमि की बहाली, सुधार, संरक्षण और प्रबंधन एक बड़ी चुनौती है, न केवल बढ़े हुए मवेशियों के लिए, बल्कि पेड़ और घास के आवरण के तहत 33 प्रतिशत क्षेत्र के राष्ट्रीय लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए भी। सामुदायिक भूमि के पुनुरूत्थान एवं उत्पादकता हेतु वांछित प्रयासों का इस लेख में वर्णन किया गया है।

सामुदायिक भूमि प्रबंधन हेतू समिति का गठन

सामुदायिक भूमि के प्रबंध की आधारभूत मान्यता यह है कि इन संसाधनों पर निकटतम रूप से निर्भर लोग इन्हें सुधारने, इनकी रक्षा करने और इनका सही उपयोग करने की क्षमता, अधिकार और दायित्व रखते हैं। यह कार्य स्थानीय समुदाय के लिए स्वाभाविक है। इसलिए सामुदायिक भूमि (चरागाह भूमि) का प्रबंध नैतिक मूल्यों एवं सामाजिक दिग्दृष्टि से किया जा सकता है। सामुदायिक "चरागाह" भूमि के प्रबंध की कारगर व स्थायी व्यवस्था के लिए सामाजिक सहमति बनाना आवश्यक होता है। इस भूमि का उचित प्रबंध एवं आम लोगों की भागीदारी सुनिश्चित करने के लिए व्यावहारिक दृष्टिकोण अपनाने के लिये लोगों को प्रेरित किया जाना चाहिये । समूह या समुदाय की आवश्यकता, रुचि का नजदीकी से अध्ययन कर उनकी पूर्ति हेतू उन व्यक्तियों का समिति में चयन करना चाहिये जिनमें गहन समझ हो तथा समाजसेवा के लिए तत्पर रहते हों, वे ही कारगर प्रबंध कर सकते हैं। इस प्रकार तैयार स्थानीय स्वैच्छिक संगठन इस कार्य में रुचि लेकर चरागाह भूमि के प्रबंधन की रूपरेखा तैयार करने में मदद करता है। जिससे चरागाह भूमि के विकास और प्रबंध का उचित ढांचा विकसित किया जा सकता है।

सामुदायिक भूमि का विकास एवं चरागाह स्थापन

राजस्थान में पशुपालन ग्रामीण आजिविका की जीवन रेखा है जिससे चरागाह का महत्व और भी बढ़ जाता है। पिछले कई वर्षों से चरागाह पर गहन चराई, कुप्रबन्धन तथा मौसमी परिवर्तनों के कारण चरागाहों की उत्पादकता दिनों दिन घटती जा रही है। अतः अब समय आ गया है कि चरागाहों के उचित प्रबन्ध के साथ साथ वैज्ञानिक तकनीकों का उपयोग कर उपलब्ध चरागाहों की उत्पादकता को बढ़ा सकते है।

(अ) चरागाह भूमि का चुनाव एवं विकास सबसे पहले सामुदायिक चरागाह की भूमि का ग्राम के पटवारी की मदद से भूमि का सीमांकन करवा लेना चाहिये जिससे किसी प्रकार का भूमि विवाद उत्पन ना हो। इसके पश्चात् भूमि से मृदा सेम्पल लेकर प्रयोगशाला में इसकी उत्पादकता की जाँच करवानी चाहिये। यदि भूमि कम उपजाऊ एवं समस्या ग्रस्त (ऊसर, अम्लीय, क्षारीय व पथरीली) है तो स्थिति अनुसार सुधार की तकनीकें अपनाकर चारा उत्पादकता बढ़ायी जा सके।

(ब) चरागाह भूमि की सुरक्षा चरागाह की सुरक्षा हेतु निम्न उपाय किये जा सकते हैं।

1. **पशु रोधक खाई** इसमें चरागाह भूमि के चारों तरफ आवारा पशुओं को रोकने के लिये एक 4 से 5 फीट गहरी खाई का निर्माण किया जाता है जिसकी ऊपर से चौड़ाई 5 फीट तथा नीचे की चौड़ाई 3 फीट होनी चहिये। खाई की खुदाई में जो मिट्टी निकलती है उसको खाई के चरागाह की तरफ डालकर एक डोली बंड का निर्माण किया जाता है जो कि खाई से 1 फीट दूर हो, जिससे वर्षा के दिनों मिट्टी खिसक कर खाई में ना जा पाये। डोली के ऊपर कॉंटेदार पौधे लगाना चाहिये।

2. **पत्थरों की दीवार बनाना** पत्थरों की दीवार बनाना जहाँ भूमि के नीचे कम गहराई पर ही पत्थर आ जाते हैं। वहाँ पर पत्थरों की दीवार बना कर उसके ऊपर कॉंटेदार झाडियाँ डाल देना चाहिये जिससे आवारा पशु चरागाह को नुकसान नहीं पहुँचा सके।

3. **वेजिटेटिव–जैविक बाड़ लगाना** जहाँ पर थोर, पार्किनसोनियाँ, विलायती बबूल आसानी से उपलब्ध हों, भूमि प्रकार के अनुसार चरागाह के चारों तरफ उपरोक्त पौधों को लगाकर भी बाड़ तैयार की जा सकती है।

4. **तार बाड़** इसमें 12 या 15 फीट की दूरी पर पत्थर या सिमेंट के 8 फीट ऊचाँई वाले खम्बे गाड़ कर उनके पाँच या छः बार कॉंटे दार तारों को बाँध कर या चेलिंग फेंसिंग की बाड़ लगाई जा सकती है।

(स) भूमि की तैयारी सर्वप्रथम चरागाह क्षेत्र में बड़े पेड़ों की छंगाई करना चाहिये तथा अवांछित झाड़ियों को जड़ सहित ऊखाड़ कर चरागाह भूमि से बाहर डालना चाहिये। इसके पश्चात भूमि की मिट्टी पलटने वाले एम.बी. प्लो से गहरी जुताई करवाना चाहिये। अच्छी तरह सड़ी हुई गोबर की खाद 15 से 20 टन प्रति हैक्टयर तथा 25 किलोग्राम मिथाईल पैराथियान या अन्य कीट नाशक पाउडर प्रति हैक्टयर की दर से अंतिम जुताई के साथ जमीन में मिला दें तथा चरागाह भूमि की टीलर या हैरो से दो तीन जुताई कर मिट्टी को बुरबुरी बनाकर पाटा लगा देना चाहिये।

(द) घास का चयन राजस्थान में कई प्रकार की घास पाई जाती हैं। इसमें अंजन व धामण घास अर्ध–शुष्क प्रदेशों के लिये और सेवण घास शुष्क प्रदेशों हेतु जहाँ वर्षा 500 मिमी से कम होती है उपयुक्त घास हैं। इन घासों की विस्तृत जानकारी इस प्रकार है। बुवाई से पूर्व या बुवाई के समय 60 किग्रा. नाइट्रोजन, 50 किग्रा. फास्फोरस व 40 किग्रा. पोटाश को पंक्तियों में मिलाना चाहिए। जिस घास का चरागाह लगाना हो उसका पूर्ण रूप से पक्का हुआ शुद्ध व स्वस्थ बीज लेना चाहिये, जिसकी अकुंरण क्षमता 80 से 90% हो। घास के बीज हल्के एवं बारीक होने के कारण बुवाई से पूर्व बीज एवं मिट्टी को 1 : 4 में मिला कर बुवाई की जाती है। बुवाई के लिये टीलर से कुड बना कर मिट्टी मिला हुआ बीज इतना डालते हैं कि प्रत्येक जगह 7 से 10 बीज आ जाने चाहिये तथा बीज डालने के बाद उसको पैर से दबा देना चाहिये जिससे बीज हवा में नहीं उड़ें तथा चींटींयां भी खराब नहीं करें ।

उन्नत अंजन घास चरागाह

1. **अंजन घास** यह शुष्क व अर्ध–शुष्क क्षेत्रों में पायी जाने वाली मरू क्षेत्र की एक प्रमुख घास है जो बहुत अधिक सूखा सहनशील है। अंजन एक बहुवर्षीय घास है जिसकी ऊंचाई 0.3 से 1.2 मीटर तक होती है। इसकी पत्तियां 2.8 से 24.0 सेमी. लम्बी तथा 2.2 से 8.5 मिमी. चौड़ी होती है। पुष्प गुच्छा सघन व 2.0 से 20 सेमी. लम्बा होता है।

2. **धामण घास** यह शुष्क एवं अर्ध–शुष्क क्षेत्रों में पाई जाने वाली एक प्रमुख बहुवर्षीय घास है जिसकी ऊंचाई 0.2 से 0.9 मीटर, पत्तियां 2.0 से 20 सेमी. लम्बी व 1.8 से 6.9 सेमी. चौडी, पुष्प गुच्छ सघन होता है। काला धामन घास दोमट से लेकर पथरीली भूमि में आसानी से पैदा होती है। यह घास अत्यन्त गर्मी व सूखा सहनशील है तथा कम वर्षा वाले क्षेत्रों में भी चारागाह विकसित करने के लिए सर्वश्रेष्ठ घास है।

3. **सेवण घास** एक बहुवर्षीय घास है जो पश्चिमी राजस्थान के शुष्क क्षेत्रों में पायी जाती है। यह घास 100 से 350 मिमी. वर्षा वाले क्षेत्रों में पायी जाने वाली एक महत्वपूर्ण घास है जो अच्छे विकसित जड़ तन्त्र के कारण सूखा सहन कर सकती है। यह कम वर्षा वाली रेतीली भूमि में भी आसानी से उगती है। इसका चारा पशुओं के लिए पाचक व पोषक होता है।

4. **ब्लूपेनीक** एक बहुवर्षीय घास है जो 150 सेमी. तक लम्बी होती है। यह विभिन्न तरह की जलवायु व मृदा में पायी जाती है। यह घास बलुई मिट्टी से लेकर चिकनी मिट्टी वाले क्षेत्रों जहां वार्षिक वर्षा 200–900 मिमी. तक होती है बहुतायत से मिलती है। यह घास भारत की उत्पत्ति की है जो लगभग सम्पूर्ण भारत में पायी जाती है।

5. **गिनी घास** यह लम्बी, घनी व गुच्छेदार बहुवर्षीय घास है जो कल्लेदार व घनी होती है। इस घास की उत्पत्ति अफ्रीका में हुई तथा यह लगभग सम्पूर्ण उष्ण कटिबन्धीय क्षेत्रों में पायी जाती है। इस घास को पशुओं को चराने के लिए अथवा काटकर पशुओं को खिलाने के काम में ले सकते हैं। यह घास लगभग 50–60 टन हरा चारा प्रति हैक्टेयर तक पैदा करती है। इस घास की कटाई 10–15 सेमी. ऊंचाई से करनी चाहिए ताकि पुनः वृद्धि अच्छी हो सके। ज्वार व बाजरा से इस घास का चारा स्वादिष्ट होता है जिसे सभी पशु चाव से खाते हैं।

6. **नेपियर घास** भारत में यह घास लगभग सम्पूर्ण भारत में पायी जाती है। नेपियर घास के लिए गर्म मौसम तथा दोमट मृदा सर्वोत्तम रहती है। इस घास की बुवाई फरवरी के अंत में की जाती है जो अगस्त तक सर्वाधिक पैदावार देती है। यह घास मक्का व ज्वार के समान ही होती है। इस घास को मुख्यतः काटकर हरे चारे के रूप में पशुओं को खिलाने के काम में लेते हैं। इसके पौष्टिक चारे को पशु चाव से खाते हैं।

(य) घास की बुवाई व उर्वरक वर्षा आने के 15 दिन पूर्व इसमें 10 से 15 टन प्रति हैक्टयर की दर से देशी सड़ा गोबर अथवा मैंगनी की खाद डालकर मिला दें। जमीन पर अधिक ढलान की स्थिति पर ढलान के विपरीत दिशा में बन्ध बाँध दें। बुवाई से पूर्व या बुवाई के समय 60 किग्रा. नाइट्रोजन, 50 किग्रा. फास्फोरस व 40 किग्रा. पोटाश को पंक्तियों में मिलाना चाहिए। एक अच्छी वर्षा होने पर उन्नत किस्म की घास जैसे अंजन या धामण की कल्टिवेटर द्वारा 45 से 50 सेमी की दूरी पर कूड़ निकाल कर बुवाई कर दें। ध्यान रहे कि बीज अधिक गहरा ना जाय और मिट्टी के ऊपर ही न रह जाय। इसलिये बीज 5 सेमी गहरा ही बोयें। बीज की मात्रा मिश्रित चरागाह लगाने हेतु 4 से 5 किलो प्रति हैक्टयर घास (अंजन या धामण) तथा 3 से 4 किलो प्रति हैक्टर दलहनी बीज (डोलिकस, चौंला या तितली मटर) और यदि केवल घास लगाना हो तो 8 से 10 किलो प्रति हैक्टयर घास का बीज बोना चाहिये। जिस घास का चरागाह लगाना हो उसका पूर्ण रूप से पक्का हुआ शुद्ध व स्वस्थ बीज लेना चाहिये जिसकी अकुंरण क्षमता 80 से 90% हो। घास के बीज हल्के एवं बारीक होने के कारण बुवाई से पूर्व बीज एवं मिट्टी को 1 : 4 में मिला कर बुवाई की जाती है। बुवाई के लिये मिट्टी मिला हुआ बीज इतना डालते हैं कि प्रत्येक जगह 7 से 10 बीज आ जाने चाहिये तथा बीज डालने के बाद उसको पैर से दबा देना चाहिये जिससे बीज हवा में नहीं उड़े तथा चींटीयां भी खराब नहीं करें।

ट्रेक्टर द्वारा भूमि तैयारी

(र) खरपतवार नियंत्रण बारिश के मौसम में बुवाई के लगभग 30 दिन बाद या घास के कुंचों की रोपाई के 20 दिन बाद खाली जगह में एक गुड़ाई करके खरपतवार का नियंत्रण कर देना चाहिए। इसमें अंकुरित घास का जमाव अच्छा होगा तथा टीलरिंग के लिये पर्याप्त जगह होने से घास का कुंचा अच्छा बनेगा । आमतौर पर चरागाहों में खरपतवार नियंत्रण हेतु रसायनों का प्रयोग नहीं किया जाता है । चरागाह स्थापन के पहले वर्ष में निराई व गुड़ाई के बाद स्थापित चरागाह में प्रति वर्ष एक अच्छी बरसात के बाद कतारों के मध्य तीलर चला कर खरपतवार नष्ट किये जाते है ।

(ल) चरागाह में पशुओं की चराई पूरे चरागाह क्षेत्र को तारबंधी कर हम 4 भागो में बाँट देते हैं। प्रत्येक भाग की बुवाई अलग अलग वर्ष करते हैं। जिस वर्ष हम बुवाई करते हैं उसमें पशुओं को चरने नहीं देते क्योंकि पशुओं से चराई करवाने से पशुओं के खुरों से जमी हुई घास के कुंचे उखड़ जाते हैं और चरागाह नष्ट हो जाता है । अतः प्रथम वर्ष तो घास को काट कर ही खिलाया जाता है जिससे नई जमीं हुयी घास को उखड़ने से बचाया जा सके। साथ ही स्थापित चरागाह की उत्पादकता वर्षों तक बनाये रखने के लिये चरागाह को 3 से 4 भाग में बाँट कर आवर्ती चराई अथवा क्रमवार चराई करवाते हैं। 5 से 6 वर्ष पश्चात कूंचों की कतार के बीच खाद देकर 'टिलर' निकाल दें। इससे चरागाह पुनर्जीवित हो कर अच्छी पैदावार देने लगेगा।

(व) घास की कटाई धामण व अंजन घास की फसल 60 से 65 दिन में कटाई के लिए तैयार हो जाती है, सींचित दशा में प्रति 50 दिन के बाद फसल कटाई के लिए तैयार हो जाती है और इस तरह 100 से 150 टन प्रति हेक्टेयर हरा चारा उपलब्ध होता है। असींचित दशा में सिर्फ मानसून पर आधारित खेती से दो या तीन बार कटाई की जाती है जो अगस्त से लेकर दिसम्बर तक मिलती है। कटाई सदैव 4 से 5 ईंच ऊचाँई पर करनी चाहिये जिससे कुंचा चरागाह में उत्पादक बना रहे ।

(श) चरागाह में अधिक उत्पादन हेतु जल संरक्षण का कार्य भी करें चरागाह भूमि में मृदा एवं जल संरक्षण कार्य हेतु ढलान की विपरित दिशा में कंटूर बंड का निर्माण करना चाहिये। जहाँ ढलान 5 से 15 % हो तो कंटूर ट्रेंच बनायी जा सकती है जो कि समान ऊंचाई वाले बिन्दुओं को जोड़ती है। जब ढलान 15 से 25%हो तो स्टैगर्ड ट्रेंच बनाई जा सकती है। इसमें ट्रेंच छोटे छोटे टुकड़ो में इस प्रकार बनाई जाती है कि ऊपर की ट्रेंच से निकले हुये पानी को नीचे वाली ट्रेंच रोक ले अर्थात एकांतर क्रम में बनाई जाती है जिससे ट्रेंच के टूटने का खतरा कम हो जाता है। एक ट्रेंच से दूसरी ट्रेंच की दूरी यदि ढलान कम हो तो 20 से 30 मीटर और अधिक होने पर 10 मीटर की दूरी पर बनाई जा सकती है। 25% से अधिक ढलान वाले क्षेत्रों में पत्थरों की 50 X 50 सेमी की डाईक (दीवार) का निर्माण किया जाता है। क्षेत्र में अधिक गहरे नाले नहीं बन पायें इसके लिये छोटे नालों को पत्थरों के चैक डेम बना कर रोकना चाहिये जिसकी अधिकतम ऊचाँई 1 मीटर हो सकती है। यह ध्यान रखें कि एक चैक डेम में 1हैक्टयर से अधिक क्षेत्र का पानी एकत्रित नहीं होना चाहिये।

(ष) चरागाहों की उत्पादकता बढ़ाने हेतु वन चरागाह बनायें अच्छी तरह स्थापित चरागाह में चारा वृक्ष जैसे अरडू, नीम, खेजड़ी, सैंजना, सीरस इत्यादि लगाये जा सकते हैं। इससे दोहरा लाभ है, एक तो ये वृक्ष वायु अवरोधक का कार्य करते हैं जिससे उस क्षेत्र में नमी अधिक दिनों तक बनी रहती है, साथ ही ये सभी चारा वृक्ष वायुमंडलीय नत्रजन का स्थिरीकरण करके भूमि की उपजाऊ क्षमता भी बढ़ाते हैं। चारा अभाव के समय इन वृक्षों से हरा चारा तो प्राप्त किया ही जाता है साथ ही इनसे जलाऊ लकड़ी भी मिल जाती है।

हिंदी किसी एक प्रदेश की भाषा नहीं बल्कि देश में सर्वत्र बोली जाने वाली भाषा है: विलियम केरी

वर्तमान में देश के चरागाहों की स्थिति, समस्यायें एवं समाधान

आर.पी. चतुर्वेदी, सुरेश चन्द्र शर्मा, रमेश बाबू शर्मा, एवं ए. साहू

पशुओं की चराई के लिये छोड़ी गई जमीन को चरागाह कहते हैं। राजस्थान में उसे घास का बीड़ा भी कहते हैं। आजादी से पहले देश के प्रत्येक गांव में पशु चराई के लिए पर्याप्त चरागाह होते थे जो कि आज नगण्य संख्या में रह गये है। कई गांवों में तो चारों दिशाओं में चरागाह होते थे। देश का पशुधन चरागाहों में ही सुरक्षित एवं उत्पादक रह सकता है। चरागाह पशुरक्षक व पशु–संवर्धन की जीवन–रेखा है। पशुधन इस देश के कृषि, व्यापार, उद्योग इत्यादि उद्यमों की आधारशिला है।

हमारा देश कृषि प्रधान कहलाता है किन्तु वर्तमान में चरागाह भूमि पर वांछित ध्यान नहीं दिया जा रहा है जबकि उद्योग प्रधान कहलाने वाले देशों के उद्योगों को भारत के कृषि उत्पादों पर निर्भर रहने के बावजूद भी वे पशुपालन की ओर ध्यान देते हैं और यथासंभव उतनी ज्यादा से ज्यादा जमीन चरागाह हेतु रखते हैं। जैसे ब्रिटेन खुद के लिए अनाज आयात करके और जापान रूई आयात करके भी चरागाहों को सुरक्षित रखते हैं क्योंकि वे चरागाहों और उनसे जुड़े पशुओं के पशुधन महत्व को समझते हैं। 1920 में इंग्लैंड में औसतन 3–5 एकड़, जर्मनी 8 एकड़, जापान 6–7 एकड़ और अमेरिका औसतन 12 एकड़ जमीन प्रति पशु के चरने के लिए थी जो कि हमारे देश में में प्रति पशु औसतन 0.78 एकड़ थी जो अब घटकर प्रति पशु 0.09 एकड़ रह गयी है। अर्थात अमेरिका में 12 एकड़ पर 01 पशु चरता है, जबकि अपने देश में एक एकड़ पर 11 पशु चरते हैं । हमारे यहाँ 1968 में चराई भूमि 3 करोड़ 32 लाख 50 हजार एकड़ थी, जो 1969 में घटकर 3 करोड़ 25 लाख एकड़ रह गई। एक ही साल में साढे सात लाख एकड़ जमीन के चरागाहों को "विकास" के नाम पर नष्ट कर दिया गया। अगले पाँच वर्षों में अर्थात 1974 में और ढ़ाई लाख एकड़ कम होकर 3 करोड़ 22 लाख 50 हजार एकड़ रह गई। इस तरह घटते–घटते यह स्थिति हो गई कि आज हमारे पास अच्छे चरागाह छोड़ पशुओं को चराने की भूमि ही नहीं बची है।

हमारा देश पशुधन की संख्या में विश्व के अग्रणी देशों में है। भैंसों से लेकर माता के नाम से पुकारी जाने वाली गाय, किसानों का ए.टी.एम के नाम से जानी जाने वाली भेड़–बकरियाँ आदि पशुधन के रूप में बहुतायत में पाली जाती है। भारत में पशुधन का विकास 0.55 प्रतिशत प्रतिवर्ष की दर से हो रहा है तथा वर्ष 2050 तक इसकी संख्या लगभग 781 मिलियन होने का अनुमान है। परन्तु उत्पादकता की दृष्टि से यहाँ के पशुओं की औसत उत्पादकता विश्व की औसत उत्पादकता का 20.50 प्रतिशत ही है, जो विश्व की तुलना में काफी कम है। इसके प्रमुख कारणों में पशुओं का अनुचित पोषण, रख रखाव, अपर्याप्त स्वास्थ्य सुविधा एवं प्रबंधन है। चारा आपूर्ति में कमी के कारण इनकी उत्पादकता का पूरा दोहन नहीं हो पा रहा है। हमारे देश में कुल दुनिया की 50 प्रतिशत से ज्यादा भैंसें, 15 प्रतिशत गाय–बैल, 15 प्रतिशत बकरी और 4 प्रतिशत भेड़ हैं । किसान के जीवन यापन में इन पशुओं की बड़ी अहम भूमिका है। हमारे यहाँ का किसान केवल अन्न का उत्पादक नहीं है, उसके नित्य जीवन में खेती और पशुपालन दोनों ताने–बाने की तरह गुंथे हुए हैं। देश में 6 प्रतिशत बंजारे घुमक्कड़ जाति के लोग भी हैं, जिनका आजीविका केवल पशुपालन पर ही निर्भर है।

वर्तमान में चरागाहों की स्थिति

अच्छी किस्म के चरागाह वहीं पाए जाते हैं, जहां 1200 मिमी या इससे अधिक बारिश होती है और तीन–चार महीने से ज्यादा सूखा नहीं रहता। देश के पश्चिमी भाग कम नमी वाले सूखे क्षेत्र में सालाना लगभग 250 से 1000 मिमी बारिश होती है जिससे जुलाई से सितंबर तक तीन महीने नमी रहती है बाकी महीने आमतौर पर सूखा रहता है। कर्क रेखा के पास होने के कारण इस भाग में सूरज की गरमी ज्यादा होती है और वाष्पीकरण की मात्रा भी बढ़ जाती है। मई महीने में तापमान 46 से 48 डिग्री सेंटीग्रेड तक चला जाता है। ज्यादा चराई का घनत्व होने से घास के मैदानों की हालत और भी तेजी से बिगड़ती जा रही है। पश्चिमी राजस्थान में जुलाई से सितंबर के बीच बारिश के समय स्थानीय घास खूब उग आती है, पर अभाव व अधिक पशु घनत्व की परिस्थितियां ऐसी हैं कि तुरंत ही वह चरा दी जाती हैं। बाद में कुछ समय तक ज्वार–बाजरे की कड़बी खिलाई जाती है और आखिर में किसी नम प्रदेशों की ओर पशु चराई हेतु चले जाना पड़ता है। अकाल के वर्षों में तो और भी बुरा हाल होने लगता है।

घटते चरागाह क्षेत्र एवं उत्पादकता

देश की जनसंख्या तीव्रगति से बढ़ने के कारण कृषि पर दबाव बढ़ता चला गया जिससे अधिकतम भूमि को जोतकर कृषि योग्य बनाकर अन्न उत्पादन हेतु उपयोग में लेने के कारण चरागाहों की भूमि घटती गयी। इतनी बड़ी संख्या में इन पशुओं के पालन के लिए चारा तो चाहिए लेकिन घटते चरागाह क्षेत्र से समस्या बढ़ती जा रही है। लगभग एक करोड़ तीस लाख हेक्टर भूमि पर ही स्थायी चरागाह है, और उपलब्ध चरागाह की स्थिति भी अच्छी नहीं है। इसलिए ये पशु बंजर, परती तथा खेती के अयोग्य लाखों हेक्टर जमीन से जो कुछ भी खाने योग्य मिलता है, वही खाकर ही अपना गुजारा कर रहे हैं। केवल जहरीले या अखाद्य खरपतवार ही बच पाते हैं। जिससे इनकी उत्पादकता बढ़ाना सम्भव नहीं है।

कुछ भूमि पर प्रभावशाली लोगों ने अतिक्रमण कर अपना कब्जा जमा लिया है जिससे चरागाह की भूमि का क्षेत्रफल घटता जा रहा है। आज यह परिस्थिति हो गई है कि पशुओं को चराने की जगह नहीं है जो पशुपालक पूर्ण रूप से पशुओं पर ही निर्भर हैं उनकी आर्थिक स्थिति ही नहीं, अपितु जीवनयापन भी खतरे में है। जब चरागाह में पशु चराई करते हैं तो भूमि उनके पैरों तले रौंदने के कारण नरम बनी रहती है तथा उनका मल–मूत्र गिरने से पौष्टिक चरागाह की भूमि की उर्वरा शक्ति को बढ़ाती है। ऐसी जमीन पर ही 5–7 फुट ऊंची व पौष्टिक घास उग सकती है। इसके अलावा पशुओं के मुंह की लार में भी विशेष गुण होता है। जब वे जमीन पर उगी हुई घास चरते हैं तब उनके मुंह की लार उस घास पर गिरती है वहां और जिस घास को वे अपने मुंह से काट लें, उसमें से फिर नये अंकुर फूटते हैं। यह देखा गया है कि दराँती से काटी घास का अंकुरण इतना अछा नहीं होता तथा कल्ले भी कम फूटते हैं। पशुओं की चरागाहों में चराई के अभाव में जमीन दिन प्रतिदिन कठोर होती चली जाती है और उसमें पशुओं का मल–मूत्र न मिलने से उतनी उत्पादक न्हीं रह जाती है। इस तरह की भूमि पर नाममात्र की घास उगती है, जो कि पौष्टिक भी नहीं होती है।

समस्यायें

दुनिया के भौगोलिक क्षेत्र के सिर्फ दो फीसदी हिस्से में, भारत में दुनिया की पशुधन आबादी का 15 फीसदी हिस्सा है। उपलब्ध भूमि पर दबाव स्पष्टरूप से दिख रहा है। यद्यपि उपलब्ध चरागाह भूमि की क्षमता केवल 31 मिलियन पशुधन आबादी की चराई के लिए है, परंतु उसी क्षेत्र में लगभग 100 मिलियन पशुओं की चराई करायी जाती है। पिछले दो दशकों से दबाव लगातार दो प्रतिशत से अधिक बढ़ा है।

1. पशुओं की चराई भूमि की आवश्यकता चारे की उपलब्धता से अधिक है। परिणामस्वरूप चरागाह भूमि में अधिक गहन चराई हो रही है, फलस्वरूप भूमि क्षरण होता जा रहा है।
2. अधिक व अनियंत्रित चराई से न केवल चरागाह भूमि की उत्पादकता कम होती है, बल्कि मिट्टी की उर्वरता और जल धारण क्षमता को भी नुकसान पहुंचता है।
3. बढ़ती आबादी और भूमि उपयोग तरीकों ने भी चरागाह भूमि के क्षरण में योगदान दिया है। इन जमीनों का उपयोग अन्य आवश्यकताओं के साथ–साथ खनन और शहरी विकास के लिए किया जाता है।
4. जलवायु परिस्थितियों के कारण देश में पर्याप्त प्राकृतिक चरागाह भूमि नहीं है। देश में चरागाह भूमि वनस्पति हटाने के कारण ही आई है। चारा फसलों का क्षेत्रफल बढ़ाना भी बहुत मुश्किल है क्योंकि जनसंख्या दबाव से 'मानव योजना' को प्राथमिकता देना अपरिहार्य है। भूमि की मुक्त चराई भी भूमि के प्राकृतिक उत्थान के लिए अनकही क्षति का कारण बनती है।

समाधान

खेती की गई चारा फसलों का फसल अवशेष चारे के रूप में प्रयोग किया जाता है जो कि पशुधन की आवश्यकता अनुरूप पर्याप्त ना होने से प्राकृतिक चरागाह भूमि एवं उसकी उत्पादकता प्रमुख महत्व की हो जाती है। पशुधन रखरखाव और जीविका के लिए चारा उत्पादन प्रणालियों का विकास महत्वपूर्ण है।

1. प्राकृतिक एवं सामुदायिक चरागाहों की बाड़ बन्दी कराना चाहिये जिससे कि मुक्त चराई ना हो पाये। अनियंत्रित चराई से चरागाह विकास एवं उत्पादकता पर प्रतिकूल असर पड़ता है।
2. सामुदायिक चरागाहों का ग्राम विकास समितियों के माध्यम से पुर्नरूत्थान किया जाना चाहिये तथा गाँवों के पशुओं की उसमें चक्रवत अथवा आवर्ति चराई कराकर उनकी उत्पादकता बनाये रखी जा सकती है।
3. चारा फसलों का उत्पादन उन्नत किस्म की अधिक पैदावार वाली किस्में विकसित कर उन्हें किसानों तक पहुँचाना आवश्यक है जिससे पर्याप्त चारा उत्पादन प्राप्त कर सके।
4. स्थापित चरागाहों में चारा वृक्ष जैसे अरडू, खेजड़ी, नीम, सैंजना इत्यादि लगाकर उन्हें वन चरागाह में बदलना चाहिये जिससे कि प्रति इकाई समय में प्रति हैक्टयर उत्पादन बढ़ेगा एवं चारा आवश्यकता की पर्याप्त पूर्ति प्राप्त की जा सके।
5. वर्षा के दिनों में बहुतायत में उपलब्ध चारा एवं पौष्टिक खरपतवारों का 'हे' और 'साईलेज' के रूप में संरक्षित करने का तरीका किसानों को सिखाकर चारा अभाव काल में इनका उपयोग करना भी चारे की कमी को पूरा करने में सहयोग करता है। इससे चरागाहों पर चराई घनत्व कम होता है और उनकी उत्पादकता भी सतत् रूप से बनी रहती है।

कई लोगों के जीवन में पशुधन के महत्व को ध्यान में रखते हुए, चराई क्षेत्रों विशेष रूप से स्थायी चरागाहों और वन चराई भूमि, को फिर से जीवंत करना महत्वपूर्ण है। यह सब एक विशेष वनस्पति प्रकार की उपयुक्तता पर एक संपूर्ण क्षेत्र–विशिष्ट सर्वेक्षण के बाद वैज्ञानिक तरीके से किया जाना चाहिए। चरवाहे को भी नवीकरणीय प्राकृतिक संसाधनों का इष्टतम अथवा वांछित उपयोग करने के लिए प्रेरित किया जाना चाहिए।

सभी भारतीय भाषाओं के लिए यदि कोई एक लिपी आवश्यक है तो वो देवनागरी ही हो सकती है: जस्टिस कृष्णस्वामी अय्यर

शुष्क एवं अर्ध–शुष्क क्षेत्रों में तितली मटर चरागाह विकास हेतु एक उत्तम विकल्प

रंगलाल मीणा, एस.सी. शर्मा, ए. साहू, बी. लाल, एल.आर. गुर्जर, राजकुमार, आर.पी. चतुर्वेदी एवं एच.एस. मीणा

तितली मटर (क्लाइटोरिया टेर्नेटा एल.) एक बहुउद्देशीय दलहनी कुल का पौधा है जिसे सामान्यतः बटरफ्लाई पी, कोंच फ्लावर क्रीपर, मसल–शील, पी ब्लू क्रीपर, क्लाइटोरिया (इंग्लिश), अपराजिता, गोकर्णी (हिंदी), शंखपुष्पी (संस्कृत, मलयालम) कक्कट्टैन और कुवलाई (तमिल), नील जेंटाना (तेलगु) ब्लू–पी (फ्रेंच), बटरफ्लाई–पी (ऑस्ट्रेलिया), कोर्डोफन–पी (सुडान), कुन्हा (ब्राजील), तेलंग ट्री (मलेशिया) ओर पोकिंडंग (फिलीपिन्स) नाम से जाना जाता है। मुख्यतः यह एक आयुर्वेदिक औषधीय पौधा है, जिसका इस्तेमाल सदियों से आयुर्वेदिक दवा के रूप में किया जा रहा है। तितली मटर के पौधे के विभिन्न भागों जैसे जड़, तना, फूल, पत्ती एवं बीज से विभिन्न प्रकार की औषधियों में प्रयोग आने वाले सक्रिय सेकेंडरी मेटाबॉलिट्स पृथक किए जाते हैं, जैसे ट्रिटेरपेनोइड्स, फ्लवोनोल ग्लाइकोसाइड, एंथोसायनिन और स्टेरॉयड इत्यादि। जिनका उपयोग पशुओं और मानव के लिए विभिन्न औषधीय प्रभाव वाली औषधियां बनाने में किया जाता है, जैसे स्मृति बढ़ाना, एसिटाइलकोलाइन की मात्रा बढ़ाना, नूट्रोपिक, एंटिस्ट्रेस्स, अन्सियलिटिक, एंटीडिप्रेसेंट, एंटीकॉन्वेलेंट, ट्रैंक्विलाइजिंग, सेडेटिव, एंटीमाइक्रोबियल, ज्वरनाशक, एंटी–इंफ्लेमेटरी, एनाल्जेसिक, मूत्रवर्धक, लोकल–एनेस्थेटिक, एंटीडायबिटिक, कीटनाशक, रक्त प्लेटलेट एकत्रीकरण – अवरोधक और मांसपेशियों और रक्त नलिकाओ को शीतलता प्रधान करने वाली। इसके अलावा इसका चारा पशु पोषण के हिसाब से अन्य दलहनी कुल के पौधों की अपेक्षा बहुत अधिक पौष्टिक, स्वादिष्ट एवं पाचनशील होता है। जिस कारण सभी प्रकार के पशु इसके चारे को बड़े चाव से खाते हैं। तितली मटर का तना बहुत पतला एवं मुलायम होता है, एवं इसकी पत्तियाँ चौडी एवं अधिक संख्या में होती है जिस कारण इसका चारा "हे" एवं "साइलेज" बनाने के लिए उपयुक्त माना गया है। अन्य दलहनी फसलों की तुलना में इसमें कटाई या चराई के बाद कम अवधि के भीतर ही पुनर्वृद्धि शुरू हो जाती है एवं इसमें चारा पैदावार की क्षमता अन्य दलहनी फसलों की तुलना में अधिक होती है। तितली मटर की खेती के लिए कम उपजाऊ भूमि सबसे उपयुक्त मानी जाती है, जिस कारण इसे कम उत्पादक चरागाहों एवं बंजर भूमियों के विकास के लिए घास + दलहनी फसल मिश्रण के रूप में उगाते हैं। दलहनी कुल का पौधा होने के कारण यह मृदा की उर्वरा शक्ति बढ़ाता है एवं इसका पौधा जमीन पर बेल की तरह फैलता है जिससे यह मृदा संरक्षण का काम करता है। अतः यह उतम अपरदन अवरोधी फसल भी है। इसके अलावा तितली मटर को सजावटी पौधे के रूप में उद्यानों में हैज पंक्ति के रूप में भी लगाया जाता है।

तितली मटर के पौधे का आकारिकी वर्णन

वनस्पति–विज्ञान के अनुसार तितली मटर (क्लाइटोरिया टेर्नेटा एल.) दलहनी कुल के उप कुल पैपिलिओनेसी से है। यह प्रतिकूल जलवायु में लंबे समय तक जीवित रहने वाला बहुवर्षीय पौधा है। इसका जड़ तंत्र क्षैतिज प्रकार का होता है तथा जड़ मोटी होती है एवं भूमि में 2 मीटर से अधिक दूरी तक फैल जाती है।जड़ के आधार पर एक या एक से अधिक हल्के बैंगनी, हल्के हरे नीले रंग के तार के जैसे लंबे तने निकलते हैं। इसका तना बारीक, मजबूत एवं अर्ध सीधा होता है एवं तने से बहुत सी शाखायें निकलती है। इसके तने की लम्बाई 0.5–3 मीटर तक होती है। पत्तियाँ तने से निकलने वाली शाखाओं पर डंडियो के रूप में दोनों ओर संयुक्त रूप से निकलती हैं जिनकी संख्या 5–7 होती है,एवं पत्तियाँ दीर्घ वृत्ताकार या भालाकार आकार की होती है, जिनकी लंबाई 3–5 सेमी तक होती है, एवं पत्तियों के नीचे वाला भाग रोमिल होता है। फूल अक्षतंतु, एकल या युगल गहरे नीले से हल्के नीले मौवे या पूर्ण सफेद रंग के होते हैं एवं बहुत छोटे पेडिकेलेट युक्त 4–5 सेमी लंबा ओर अंडाकार त्रिकोणीय होते हैं। फली चपटी, रैखिक, चोंच वाली, 6–12 सेमी लंबी और 0.7–1.2 सेमी चौड़ी एवं थोड़ी सी रोयेंदार होती हैं जिसमें 8–11 तक बीज पाये जाते हैं एवं परिपक्व होने पर पीले भूरे या जैतून भूरे रंग की हो जाती है। इसका बीज 4.5–7 मिमी लंबा और 3–4 मिमी चौड़ा जैतून भूरे या काले रंग के होते हैं एवं 1000 बीजो का औसत भार लगभग 44 ग्राम होता है।

उत्पत्ति और वितरण

तितली मटर का उत्पत्ति स्थान एशिया के उष्णकटिबंधीय क्षेत्र एवं अफ्रीका को माना जाता है, परन्तु दुनिया भर में इसके व्यापक प्राकृतिककरण के कारण इसकी उत्पत्ति अस्पष्ट है। हालांकि तितली मटर संसार के उष्णकटिबंधीय और उपोष्णकटिबंधीय देशों में व्यापक रूप से फैला हुआ है। परन्तु इसकी व्यापक रूप से खेती दक्षिण और मध्य अमेरिका, पूर्व और पश्चिम इंडीज, अफ्रीका, ऑस्ट्रेलिया, चीन और भारत में की जाती है।

चारा उत्पादन क्षमता एवं चारे का पोषक मान

अनुकूल परिस्थितियों में तितली मटर से लगभग 8—10 टन प्रति हेक्टेयर प्रति वर्ष तक सुखा चारा मिल जाता है, एवं वैज्ञानिक अध्ययन एवं विश्लेषण से यह पता लगा हैकि इसका चारा पशु पोषण के हिसाब से बहुत ही उपयुक्त माना गया है। इसके चारे में सभी पोषक तत्व पर्याप्त मात्रा में पाये जाते हैं एवं इसका चारा बहुत ही स्वादिष्ट एवं पाचनशील होता है, जिस कारण सभी प्रकार के पशु इसके चारे को बड़े चाव से खाते है। इसके चारे में पोषक मान निम्नलिखित हैः—

तालिका-1. तितली मटर के चारे का पोषक मान

पोषक तत्व	पोषक मान (प्रतिशत)
प्रोटीन (एन 6.25)	19—23
क्रूड फाइबर	29—38
ईथर एक्सट्रेक्ट	3.4—4.4
एनडीएफ	42—54
एडीएफ	38—47
फाइबर	21—29
लिगनिन	14—16
राख	7—9
पाचनशक्ति	60—75

तितली मटर की उन्नत खेती

तितली मटर एक बहुउद्देशीय बहुवर्षीय दलहनी कुल का पौधा है। यह प्रतिकूल जलवायु जैसे सूखा, गर्मी एवं सर्दी के प्रति सहिष्णु है, एवं यह विभिन्न प्रकार की मिट्टियां जैसे रेतीली मिट्टी से लेकर गहरी जलोढ़ दोमट एवं भारी काली मिट्टी जिनका पी एच मान 4. 7 से 8.5 के मध्य रहता है, के लिए अनुकूलित है एवं यह मध्यम खारी मिट्टीयों के प्रति सहिष्णु है। यह संसार के 400 से 1500 मिलीमीटर वार्षिक वर्षा वाले उष्णकटिबंधीय और उपोष्णकटिबंधीय क्षेत्रो में समुद्र तल से 1600 मीटर की ऊँचाई तक उगाया जाता है। तितली मटर का पौधा जलमग्न की स्थिति के प्रति अतिसंवेदनशील होता है, अतः इसकी खेती के लिए उपयुक्त जलनिकास वाली मिट्टी चाहिए। तितली मटर की वृद्धि 15 डिग्री सेल्सियस से 45 डिग्री सेल्सियस तापमान तक नहीं रुकती, पर इसकी वृद्धि के लिए 32 डिग्री सेल्सियस तापमान अनुकूलतम माना जाता है।

तालिका-2. तितली मटर की खेती के लिए उन्नत सस्य क्रियाएँ एवं उत्पादन क्षमता

सस्य क्रिया	विवरण
फसल चक्र एवं फसल मिश्रण	मटर एक उपयुक्त फसल है। क्योंकि इसमें नाइट्रोजन स्थिरीकरण की क्षमता होती है एवं इसका पौधा बेल की तरह भूमि पर वृद्धि करता है, जिससे इसके साथ उगाई जाने वाली फसल के साथ यह सूर्य की रोशनी एवं जगह के लिए प्रतिस्पर्धा नहीं करता है। इन गुणों के कारण यह फसल चक्र एवं घास+दलहनी फसल मिश्रण के लिए उतम सहजीव फसल का काम करता है। तितली मटर की खेती के लिए प्रमुख फसल चक्र निम्न हैः– तितली मटर(हरी खाद/चारा) – सरसों/अलसी/गेंहूँ/जौं/जई। तितली मटर की खेती के लिए प्रमुख फसल मिश्रण निम्न हैः– तितली मटर+ ज्वार/बाजरा/मक्का, तितली मटर+नेपियर घास/दीनानाथ घास/अंजन घास/ धामन घास/ब्लू पेनिक घास/गुनिया घास। तितली मटर की खेती के लिए प्रमुख कृषि वानिकी प्रणाली निम्न हैः– तितली मटर+ बेर/अरडु/सेंजना/नीम/खेजरी
उन्नत किस्में	CAZRI-466, CAZRI-752, CAZRI-1433, IGFRI-23-1, IGFRI-12-1, IGFRI-40-1, ILCT-249 and ILCT-278
बीज दर, बुआई की विधि एवं बीजोपचार	बीज की मात्राः– 20 से 25 किलो बीज प्रति हेक्टेयर (शुद्ध फसल) 10 से 15 किलो बीज प्रति हेक्टेयर (मिश्रित फसल) 4 से 5 किलो बीज प्रति हेक्टेयर (स्थायी चारागाह) एवं 8 से 10 किलो बीज प्रति हेक्टेयर (अल्पावधि चरण चारागाह) की बुआई के लिए पर्याप्त है। बुआई की विधिः–सामान्यतः कतार में बुआई करें, जिसमे कतार से कतार की दूरी 20–25 सेन्टीमीटर तथा पौधे से पौधे की दूरी 8–10 सेन्टीमीटर रखनी चाहिए। बीज की गहराई 2.5 से 3 सेन्टीमीटर रखनी चाहिए। बीजोपचारः– बीजोपचार के लिए बीज को बुआई से पूर्व कार्बेन्डाजिम (बाविस्टिन) 1–2 ग्राम अथवा थायरम 2.5 ग्राम प्रति किग्रा बीज की दर से उपचारित करके। इसके बाद राइजोबियम कल्चर से उपचारित करके बोना चाहिए।
खाद एवं उर्वरक	तितली मटर के चारे की अच्छी पैदावार के लिए पहले साल 10–15 किग्रा नाइट्रोजन, 40–50 किग्रा फास्फोरस प्रति हेक्टेयर देना चाहिए इसके बाद 30 किग्रा फास्फोरस प्रति हेक्टेयर प्रति वर्ष देना चाहिए।
उपज	चाराः वर्षा आधारित स्थिति में पहले साल लगभग 1.1 से 3.3 टन प्रति हेक्टेयर सूखा चारा मिल जाता है जबकि सींचित स्थिति में लगभग 8–10 टन प्रति हेक्टेयर सूखा चारा मिल जाता है। बीजः वर्षा आधारित स्थिति में पहले साल लगभग 100से 150 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर बीज मिल जाता है जबकि सींचित स्थिति में लगभग 500 से 600 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर बीज मिल जाता है।
कटाई एवं चराई प्रबंधन	कटाईः– पहले साल इससे केवल एक कटाई लेना चाहिए ताकि इसके पौधे की जड़ें अच्छी तरह विकसित हों जाये। इसके बाद सस्य प्रबंधन एवं वर्षा की मात्रा के आधार पर साल भर में दो या दो अधिक कटाई ली जा सकती है। चराई प्रबंधनः– इसका चारा अन्य चारे वाली फसलों की अपेक्षा बहुत अधिक स्वादिष्ट होता है इस कारण चरागाहों में पशुओं दूसरे चारे से पहले इसके चारे को खाते हैं, पशुओं द्वारा अधिक चुनाव के कारण धीरे धीरे चरागाहों में इसकी पौध संख्या कम होने लगती है। अतः चरागाहों में तितली मटर की पौध संख्या उचित अनुपात में रखने के लिए चरागाहों में नियंत्रित चराई करनी चाहिए।

चरागाह विकास में महत्त्व

भारतीय कृषकों का जीवनयापन मूल रूप से कृषि एवं पशुपालन पर आधारित है। पशुधन की संख्या में भारत विश्व में अग्रणी देश है। परन्तु प्रति पशु उत्पादकता में हम विश्व के अन्य देशों से काफी पीछे हैं। यहाँ के पशुओं की प्रति पशु औसत उत्पादकता विश्व की औसत उत्पादकता का लगभग 21 प्रतिशत ही है, जो विश्व की तुलना में काफी कम है। इसकी कम उत्पादकता का प्रमुख कारण पशुओं के लिए पर्याप्त एवं पौष्टिक चारे का अभाव है। चारा आपूर्ति में कमी के कारण इनकी उत्पादकता का पूरा दोहन नहीं हो पा रहा है। पशुपालन में होने वाले कुल खर्च का 60–70 प्रतिशत खर्च केवल पशु पोषण पर होता है। अतः कम लागत पर पशु पोषण के लिए पर्याप्त मात्रा में पौष्टिक चारा उपलब्ध करवा कर पशुपालन को किसानों के लिए मुनाफे का व्यवसाय बनाया जा सकता है। बढ़ती जनसंख्या की भोजन की मांग को पूरा करने के लिए उपजाऊ भूमियों का उपयोग खाद्य एवं नकदी वाली फसलों को उगने में हो रहा है। जिस कारण पौष्टिक चारा उत्पादन के लिए उपजाऊ भूमि उपलब्ध होने की संभावना दिन–प्रतिदिन कम होती जा रही है। इन परिस्थितियों में पशु पोषण के लिए पर्याप्त मात्रा में पौष्टिक चारा उपलब्ध करवाने के लिए अनुपयुक्त बंजर भूमियों एवं अनुत्पादक चरागाहों का पुनर्स्थापन या नवीनीकरण करना एक बेहतर विकल्प है। जिससे पशुओं को पौष्टिक चारा पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध हो सकता है। बंजर भूमियों एवं अनुत्पादक चरागाहों का पुनर्स्थापन या नवीनीकरण में तितली मटर एक महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है। क्योंकि इसकी पत्तियों में लगभग 3.0 से 4.0 प्रतिशत नाइट्रोजन एवं सम्पूर्ण पौधे में लगभग 1.5 से 2.0 प्रतिशत नाइट्रोजन पाया जाता है जिस कारण इसे चरागाहों का प्रोटीन बैंक भी कहा जाता है, एवं इसका चारा पौष्टिक, स्वादिष्ट एवं पाचनशील होता है। जिस कारण सभी प्रकार के पशुओं इसके चारे को बड़े चाव से खाते हैं। दलहनी कुल का पौधा होने के कारण यह मृदा की उर्वरा शक्ति बढ़ाता है एवं इसका पौधा जमीन पर बेल की तरह फैलता है जिससे यह मृदा संरक्षण का काम करता है। साथ ही यह सूखा एवं गर्मी के प्रति सहिष्णु है। इसके अलवा इसके पौधे में पुनर्जनन, पुनः विकास एवं बढवार दूसरे दलहनी पौधों की अपेक्षा बहुत अधिक होती है। अतः इन खूबियों के कारण तितली मटर अनुपयुक्त बंजर भूमियों एवं अनुत्पादक चरागाहों के लिए एक बेहतर विकल्प है। अनुपयुक्त बंजर भूमियों एवं अनुत्पादक चरागाहों में इसके बीज को उन्नत किस्म की घास के बीज के साथ मिलाकर बुवाई करके, इस प्रकार के चरागाहों की उत्पादकता बढ़ा सकते हैं। जिससे किसानों को वर्ष भर पशुओं के लिए पौष्टिक चारा पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध हो सकता है एवं बेकार पड़ी बंजर भूमि का सदुपयोग किया जा सकता है। तितली मटर एक उतम अपरदन अवरोधी फसल होने के कारण भू–क्षरण की रोकथाम करता है एवं बंजर भूमि में नाइट्रोजन एवं कार्बनिक पदार्थ की मात्रा बढ़ाता है जिससे मिट्टी की जल धारण क्षमता व उर्वरता बढ़ती है। कुछ वर्ष बाद ही बंजर भूमि कृषि योग्य उपजाऊ हो जाती है। इसका चारा अन्य चारों की अपेक्षा बहुत अधिक स्वादिष्ट होता है जिस कारण चरागाहों में पशुओं दूसरे चारे से पहले इसके चारे को खाते हैं इस कारण धीरे धीरे चरागाहों में तितली मटर की पौध संख्या कम होने लगती है। अतः चरागाहों में तितली मटर की पौध संख्या उचित अनुपात में रखने के लिए चरागाहों में नियंत्रित चराई करनी चाहिए साथ ही उचित सस्य क्रियाएँ अपनाकर चरागाहों की उत्पादकता बनाये रखनी चाहिए ताकि पशुओं को वर्ष भर पौष्टिक चारा पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध हो सके।

हिंदी का प्रचार और विकास कोई रोक नहीं सकताः
पंडित गोविंद बल्लभ पंत

राजस्थान में कैसे बढ़ाएं चारा जई की उत्पादकता

हरिसिंह मीणा, आर.पी. नागर, एस.एस. मीणा, बनवारी लाल एवं रंगलाल मीणा

राजस्थान में कृषि एवं पशुपालन सदियों से एक दूसरे के पूरक रहे हैं तथा विशेषकर शुष्क एवं अर्ध शुष्क जलवायु क्षेत्र में पशुपालन आय का एक प्रमुख स्त्रोत माना जाता है। अतः पशुपालन क्षेत्र में विकास से न केवल रोजगार की अपार संभावनाएं बनती हैं बल्कि ग्रामीण क्षेत्रों में किसानों की आय को भी बढ़ाया जा सकता है। राजस्थान के सकल घरेलू उत्पाद में दुग्ध उत्पादन एवं पशुपालन का हिस्सा लगभग 9.2 प्रतिशत है तथा ग्रामीण राजस्थान में 80 प्रतिशत से ज्यादा परिवार पशुपालन करते हैं, इस क्षेत्र से लघु एवं सीमांत किसानों की कुल आय में लगभग 35 प्रतिशत तक का योगदान है जो कि पश्चिमी क्षेत्र में 50 प्रतिशत तक होता है। पशुगणना 2012 के अनुसार राजस्थान के कुल पशुधन का लगभग 23.08 प्रतिशत गायें तथा 22 प्रतिशत भैंसें हैं, जिनकी दुग्ध उत्पादकता उत्तरी भारत के राज्यों जैसे पंजाब एवं हरियाणा की तुलना में बहुत कम है जिसका एक प्रमुख कारण रबी के मौसम में राजस्थान के अधिकतर क्षेत्रों में सिंचाई जल की कमी होने के कारण बरसीम और रिजका जैसी फसल का उत्पादन बहुत कम हाता है, जिससे हरे चारे की उपलब्धता में कमी आती है। जिन क्षेत्रों में रबी के मौसम में केवल दो या तीन सिंचाई उपलब्ध हो ऐसी स्थिति में जई की फसल से हरे चारे की आपूर्ति की जा सकती है।

जई एक बहुत ही महत्वपूर्ण एवं प्रचलित चारा फसल है, जो कि मुख्य रूप से उत्तरी, पश्चिमी एवं मध्य भारत में उगाई जाती है। जई का चारा उच्च गुणवत्ता का होता है क्योंकि इसमें क्रूड प्रोटीन की मात्रा लगभग 10–12 प्रतिशत होती है जो कि इसकी पौष्टिकता का सूचक है साथ ही साथ इसमें सेलुलोज, हेमिसेलुलोज तथा लिग्निन की मात्रा कम होने के कारण पशुओं को सुपाच्य होता है, हालाँकि चारे की पौष्टिकता उसकी कटाई की अवस्था पर निर्भर करती है।

जई की खेती बरसीम की अपेक्षा अच्छी मानी जाती है क्योंकि बरसीम की तुलना में जई आसानी से उगाई जा सकती है और इसके उत्पादन में पानी कम लगता है। इसका चारा पौष्टिक, सुपाच्य एवं ऊर्जादायक होता है। जई के चारा उत्पादन में लागत कम आती है तथा चारा का उत्पादन भी अधिक होता है, साथ ही बीज उत्पादन करने में भी आसानी होती है। हरे चारे को पशु भी बड़े चाव से खाते हैं।

मृदा एवं जलवायु

यह फसल सामान्यतया सभी प्रकार की मृदा में उगाई जा सकती है, परन्तु बलुई दोमट मृदा इसके लिये सर्वोत्तम रहती है, हल्की अम्लीय मृदा से लेकर मध्यम क्षारीय मृदा में भी इसका सफल उत्पादन लिया जा सकता है, यह एक शीतोष्ण कटिबंधीय फसल है अतः इसकी सबसे अधिक बढ़वार ठंडी एवं नम जलवायु में होती है। 25°C से अधिक तापमान होने पर इसकी वृद्धि पर विपरीत प्रभाव पड़ता है तथा फसल के चारे की गुणवत्ता में कमी आ जाती है।

बुवाई का समय

राजस्थान में जई की बुवाई का सर्वोत्तम समय अक्टूबर माह के प्रथम सप्ताह से नवम्बर माह के प्रथम सप्ताह तक है जिससे दिसंबर–जनवरी में हरा चारा प्राप्त किया जा सकता है लम्बे समय तक चारा प्राप्त करने के लिए तथा एक ही समय पर कटाई से बचने के लिए 10 दिन के अंतराल में सिलसिलेवार बुवाई करनी चाहिए।

बुवाई की विधि

खेत को तैयार करने हेतु हैरो या कल्टीवेटर (हल) से 1–2 जुताई कर भूमि को समतल बनाने के लिए पाटा लगाना आवश्यक है।

जई की बुवाई दो प्रकार से की जा सकती है–

1. समतल बेड पर बुवाई

इस विधि में सीड ड्रिल की सहायता से बीज की बुवाई 20–25 सें.मी. की दूरी पर 5 सें.मी. गहराई में कतारों में करनी चाहिए जिससे प्रति पौधा अधिक कल्ले फूटते हैं तथा खरपतवार प्रबंधन भी आसानी से किया जा सकता है।

2. रेज्ड बेड एवं कूड़ विधि

इस विधि में रेज्ड बेड प्लांटर की सहायता से 60 सें.मी. चौड़ी बेड तथा 30 सें.मी. चौड़ा कूड़ बनाया जाता है जो एक संचालन में तीन कूड़ तथा दो रेज्ड बेड बनाता है, इस विधि में चारे की केवल 10 प्रतिशत कम उपज प्राप्त कर 50 प्रतिशत तक पानी बचाया जा सकता है तथा खरपतवारों का भी सरलतापूर्वक प्रबंधन किया जा सकता है। विभिन्न अनुसंधानों के द्वारा इस विधि से बुवाई की अनुशंषा की गई है ।

बीज दर

आमतौर पर छिड़काव विधि से बुवाई करने पर 120 किग्रा प्रति हैक्टेयर बीज की आवश्यकता होती है, वहीं पर सीड ड्रिल से बुवाई करने पर 100 किग्रा प्रति हैक्टेयर बीज पर्याप्त होता है परन्तु छोटे दाने वाली प्रजातियों जैसे जे.एच.ओ.–851 के लिये 75–80 किग्रा बीज की आवश्यकता होती है।

बीजोपचार

बीजोपचार के लिए पहले फफूंदनाशी फिर कीटनाशी तथा सबसे बाद में जैव उर्वरक का प्रयोग करना चाहिए। जई की फसल को फफूंद जनित रोगों से बचाव के लिए थायरम 3 ग्राम प्रति किग्रा बीज के हिसाब से बीज उपचारित करना चाहिए तथा जैव उर्वरकों में एजोटोबैक्टर कल्चर से 200 ग्राम कल्चर प्रति 10 किग्रा बीज की दर से बीजोपचार करें जिससे प्रति हैक्टेयर 20–30 किग्रा नत्रजन की बचत होती है। इसी के साथ बीज को फॉस्फोरस घोलक जीवाणु 100 मिली प्रति 10 किग्रा बीज के हिसाब से उपचारित करना चाहिए ।

फसल पद्धति में जई का समावेश

बहु कटान बाजरा + लोबिया – जई + चाइनीज सरसों

बहु कटान ज्वार + लोबिया – जई + चाइनीज सरसों

बहु कटान बाजरा + ग्वार – जई + रिजका

बहु कटान बाजरा + लोबिया – जई + मेथा

जई व चाइनीज सरसों की मिश्रित खेती (1 :1)

राजस्थान के लिए उपयुक्त प्रजातियां

उन्नतशील किस्में	उपज (टन/हे)
जे. एच. ओ.–822	45–50
ओ. एल.–9	40–55
ओ. एल.–125, ओ. एल.–529	40–50
कैण्ट ओ. एस.–6	40–55
जे. एच. ओ.–851	50–60
जे. एच. ओ. –2000–4	35–40
जे. एच. ओ. –99–1,– 2	40–45

जई की उन्नतशील किस्में

पोषक तत्व प्रबंधन

खाद एवं उर्वरको का प्रयोग मृदा की जाँच के अनुसार करें हालाँकि इस फसल में राजस्थान की जलवायु के अनुसार अधिक एवं गुणवत्ता युक्त पैदावार के लिए बुवाई से 20–25 दिन पहले 10 –12 टन सड़ी हुई गोबर की खाद को खेत में जुताई के समय मिलाना चाहिये। इसके अलावा बुवाई के समय 100 किग्रा यूरिया, 200 किग्रा सिंगल सुपर फास्फेट एवं 40 किग्रा म्यूरेट ऑफ पोटाश प्रयोग करना चाहिये। फसल की जल्दी बढ़वार के लिए प्रत्येक कटाई के बाद 60 किग्रा यूरिया/ हे. की दर से अवश्य छिड़काव करें । जिन मृदाओं में ज़िंक की कमी हो उनमे 10 किग्रा ज़िंक सल्फेट बुवाई के समय तथा 0.5 प्रतिशत घोल का खड़ी फसल में पत्तियों पर छिड़काव करें।

सिंचाई

इस फसल की अच्छी उपज लेने के लिए 4–5 सिंचाइयों की आवश्यकता होती है तथा इसकी क्रांतिक अवस्था कल्ले फुटान होती है अर्थात इस अवस्था पर सिंचाई अवश्य करनी चाहिए। बुवाई के समय पलेवा के बाद पहली सिंचाई 20–22 दिन बाद करनी चाहिए जिससे कल्ले फूटने में मदद मिलती है तथा इसके बाद प्रत्येक 15–20 के अंतराल में सिंचाई करनी चाहिए। पानी के बचाव के लिए फव्वारा विधि का प्रयोग करें।

खरपतवार प्रबंधन

इस फसल में रबी मौसम की चौड़ी पत्ती वाले खरपतवार जैसे बथुआ, कृष्णनील, हिरनखुरी, सत्यानाशी तथा जंगली गोभी एवं संकरी पत्ती वाले जैसे जंगली जई, गुल्लीडंडा, प्याजी, गजरी, आदि प्रमुख हैं । फसल को खरपतवारों की शुरूआती प्रतिस्पर्धा से बचाने के लिए बुवाई के 20 दिन बाद केवल एक निराई–गुड़ाई पर्याप्त होती है, फिर भी रासायनिक खरपतवार नियंत्रण के लिए बुवाई के 24 घंटे बाद पेंडीमेथलीन 1.0 किग्रा/हेक्टेयर सक्रिय तत्व का छिड़काव करें तथा खड़ी फसल में खरपतवार अधिक होने की स्थिति में बुवाई के 35 दिन बाद मेटसल्फुरोन मिथाइल 6 ग्राम प्रति हेक्टेयर की दर से छिड़काव करने से प्रभावी खरपतवार नियंत्रण किया जा सकता है। ध्यान रहे कि शाकनाशी के छिड़काव के लगभग 20–25 दिन तक यह चारा पशुओं को नहीं खिलाएं।

कटाई

एक कटाई वाली जई फसल की पहली कटाई 65–75 दिनों की अवस्था (फूल आने से लेकर दूधिया अवस्था) पर करनी चाहिये। दूसरी कटाई प्राप्त करने के लिए प्रथम कटाई 60 दिन की अवस्था पर एवं उसके बाद 30–35 दिन बाद फूल आने से लेकर दूधिया अवस्था पर इसकी कटाई करनी चाहिये। तीन कटाइयाँ प्राप्त करने के लिये पहली कटाई 55–60 दिन पर तथा इसके पश्चात दूसरी एवं तीसरी कटाई पहली कटाई के हर 25–30 दिन पर करनी चाहिये। अधिक कटाई के लिए बहु–कटाई वाली प्रजातियों जैसे जे.एच.ओ.–851, जे.एच.ओ.–822 का चुनाव करना चाहिये। ध्यान रहे कि बहु कटान जई की कटाई सतह से 10–12 से.मी. ऊपर से करें ताकि अगला फुटान जल्दी आ सके ।

उपज

जई के चारे की उपज शस्य क्रियाओं पर निर्भर करती है, उत्तम फसल लेने के लिए उपरोक्त शस्य क्रियाओं को अपनायें, सामान्यतया इस फसल से 400–500 क्विटंल/हे. हरा चारा प्राप्त होता है।

निष्कर्ष

राजस्थान की जलवायु के अनुसार दिसंबर–जनवरी में जब सर्दी ज्यादा हो तो सामान्यतया रिजका की वृद्धि कम होती है, उस समय इस फसल से हरे चारे की आपूर्ति की जा सकती है। सिंचाई जल की कम उपलब्धता तथा विभिन्न कृष्य परिस्थितियों की अनुकूलता को ध्यान में रखते हुए यह राजस्थान के लिए रबी मौसम की उत्तम चारा फसल है।

फसल चक्र किसानों के लिए एक लाभकारी प्रणाली

रमेश कुमार गियाड़, रामधन घसवा, राजकुमार एवं मीना चौधरी

प्राचीन काल से ही मनुष्य अपने पोषण के लिए विभिन्न प्रकार की फसलें उगाता आ रहा है। ये उगाई जाने वाली फसलें मौसम के अनुसार भिन्न–भिन्न होती हैं। शुरू से ही किसी खेत में एक ही फसल न उगाकर फसलें बदल–बदल कर उगाने की परम्परा चली आ रही है। परन्तु यह परंपरा विशेष वैज्ञानिक सिद्धांतों पर आधारित न होकर सामान्य आवश्यकता के अनुसार चलती आ रही है। परन्तु आज नये–नये अनुभव एवं अनुसंधानों के आधार पर यह ज्ञात कर लिया गया है कि लगातार एक ही फसल को उगाने से उत्पादन में कमी आ जाती है। इस उत्पादकता को बनाये रखने के लिए फसल चक्र सिद्धांत बनाया गया है।

फसल चक्र क्या है?

किसी निश्चित क्षेत्र पर निश्चित अवधि के लिए भूमि की उर्वरता को बनाये रखने के उद्देश्य से फसलों को अदल–बदल कर उगाने की क्रिया को फसल चक्र कहते हैं अथवा, किसी निश्चित क्षेत्र में एक नियत अवधि में फसलों को इस क्रम में उगाया जाना कि उर्वरा शक्ति का कम से कम ह्रास हो, फसल चक्र कहलाता है।

फसल चक्र का महत्व

वर्तमान समय में खेती में उत्पादन व उत्पादकता में कमी आने के कारणों का वैज्ञानिक अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि फसल चक्र सिद्धांत का न अपनाया जाना एक महत्वपूर्ण कारक है क्योंकि फसल चक्र सिद्धांत न अपनाने से उपजाऊ भूमि का क्षरण, जीवांश की मात्रा में कमी, मित्र जीवों की संख्या में कमी, भूमि से लाभदायक सूक्ष्म जीवों की कमी, खरपतवार की समस्या में बढ़ोतरी, जल धारण क्षमता में कमी, भूमिगत जल का प्रदूषण, कीटनाशकों का अधिक प्रयोग, क्षारीयता में बढ़ोतरी, भूमि के भौतिक व रासायनिक गुणों में परिवर्तन आदि से फसल उत्पादक प्रणाली के टिकाऊपन के खतरे बढ़ गए हैं। आज न केवल फसलों की उत्पादन वृद्धि रुक गयी है बल्कि एक निश्चित मात्रा में उत्पादन प्राप्त करने के लिए पहले की अपेक्षा बहुत अधिक मात्रा में उर्वरकों का प्रयोग करना पड़ रहा है जिससे मृदा की उर्वरक क्षमता का ह्रास हुआ है। इन सब विनाशकारी अनुभवों से बचने के लिए फसल चक्र, फसल सघनता के सिद्वांतो को दृष्टिगत रखते हुए फसल चक्र में दलहनी फसलों का समावेश जरुरी हो गया है क्योंकि दलहनी फसलें फसल उत्पादन की प्रक्रिया में टिकाऊपन विकसित करती हैं।

फसल चक्र का सिद्धांत क्या है?

यह जानना जरूरी है कि फसल चक्र का सिद्धांत क्या है। किसानों को चाहिए कि वे अपनी खेती के आकार, अपने बजट और उपलब्ध साधनों के आधार पर ही फसल चक्र के सिद्धांत का पालन करें। यह जरूरी नहीं है कि हर चीज को जरूरत से ज्यादा बोया जाये ।किसान संसाधन व क्षमता के अनुसार ही फसल चक्र को अपनाएं।

- अधिक खाद चाहने वाली फसलों के बाद कम खाद चाहने वाली फसलों का उत्पादन,
- अधिक पानी चाहने वाली फसल के बाद कम पानी चाहने वाली फसल,
- अधिक निराई– गुड़ाई चाहने वाली फसल के बाद कम निराई– गुड़ाई चाहने वाली फसल,
- दलहनी फसलों के बाद अदलहनी फसलों का उत्पादन,
- अधिक मात्रा में पोषक तत्व शोषण करने वाली फसल के बाद खेत को परती रखना,
- एक ही नाशी जीवों से प्रभावित होने वाली फसलों को लगातार नहीं उगाना,
- उथली जड़ वाली फसल के बाद गहरी जड़ वाली फसल को उगाना,
- फसलों का समावेश स्थानीय बाजार की माँग के अनुरूप रखना,
- फसल का समावेश जलवायु तथा किसान की आर्थिक क्षमता के अनुरूप करना चाहिए।

कुछ उपयोगी फसल चक्र

कुछ प्रचलित फसल चक्र इस प्रकार हैं जैसे –

परती पर आधारित फसल चक्र परती–गेहूँ, परती–आलू, परती–सरसों आदि।

दलहनी फसलों पर आधारित फसल चक्र मूंग–गेहूँ, कपास–मटर–गेहूँ, ज्वार–चना, बाजरा–चना, मूंगफली–अरहर, मूंग–गेहूँ, कपास–मटर–गेहूँ, ज्वार–चना, बाजरा–चना आदि।

अन्न की फसलों पर आधारित फसल चक्र मक्का–गेहूँ, ज्वार–गेहूँ, बाजरा–गेहूँ, गन्ना–गेहूँ, मक्का–जौ, चना–गेहूँ, मक्का–उर्द–गेहूँ आदि।

हरी खाद पर आधारित फसल चक्र इसमें फसल उगाने के लिए हरी खाद का प्रयोग किया जाता है। जैसे हरी खाद – गेहूँ, हरी खाद–आलू आदि।

सब्जी आधारित फसल चक्र भिण्डी–मटर, पालक–टमाटर, फूलगोभी–मूली, बन्दगोभी–मूली, बैंगन–लौकी, टिण्डा–आलू–मूली इत्यादि हैं।

फसल चक्र के लाभ

फसल चक्र से निम्नलिखित लाभ होते हैं:

1. फसल चक्र से मृदा उर्वरता बढ़ती है
2. भूमि में कार्बन–नाइट्रोजन के अनुपात में वृद्धि होती है।
3. भूमि के पी.एच. तथा क्षारीयता में सुधार होता है।
4. भूमि की संरचना में सुधार होता है एवं मृदा क्षरण की रोकथाम होती है।
5. फसलों का बीमारियों से बचाव होता है व कीटों का नियन्त्रण होता है।
6. खरपतवारों की रोकथाम होती है।
7. फसल चक्र से खेत पूरे साल चलता रहता है जिससे किसान खाली नहीं बैठते हैं और वर्ष भर आय प्राप्त होती रहती है।
8. भूमि में विषाक्त पदार्थ एकत्र नहीं हो पाते हैं।
9. उर्वरक–अवशेषों का पूर्ण उपयोग हो जाता है एवं सीमित सिंचाई सुविधा का समुचित उपयोग होता है।
10. फसलों की अधिक उत्पादकता प्राप्त होती हैं।

फसल चक्र को प्रभावित करने वाले कारक

1. **जलवायु सम्बन्धी कारक -** जलवायु के मुख्य कारक तापक्रम, वर्षा, वायु एवं नमी है। यही कारक जलवायु को प्रभावित करते हैं जिससे फसल चक्र भी प्रभावित होता है। जलवायु के आधार पर फसलों को तीन वर्गो में मुख्य रूप से बांटा गया है जैसे खरीफ, रबी एवं जायद।
2. **भूमि संबंधी कारक -** भूमि संबंधी कारको में भूमि की किस्म, मृदा उर्वरता, मृदा प्रतिक्रिया, जल निकास, मृदा की भौतिक दशा आदि आते हैं। ये सभी कारक फसल की उपज पर गहरा प्रभाव डालते हैं।
3. **किसान की आर्थिक दशा -** किसानों की आर्थिक स्थिति का भी फसल चक्र पर प्रभाव पड़ता है। किसान के पास पूंजी एवं संसाधनों की कमी होने से फसल चक्र में ऐसी फसलों का समावेश किया जाना चाहिए, जिनकी कम लागत हो।
4. **बाजार की मांग -** बाजार की मांग के अनुरूप फसलें ली जानी चाहिए जैसे– शहर के नजदीक वाली भूमि में साग–सब्जी वाली फसलों को प्राथमिकता देना चाहिए।

5. **प्रक्षेत्र से बाजार की दूरी -** बीज की मांग एवं व्यापारिक दृष्टि से ली गयी फसलों के लिए यह आवश्यक है कि बाजार प्रक्षेत्र के पास होना चाहिए।

6. **आवागमन के साधन -** आवागमन के समुचित साधन उपलब्ध होने से फसल चक्र में सुविधा के अनुसार फसलों का समावेश करना चाहिए।

7. **श्रमिकों की उपलब्धता -** कृषि में श्रमिकों का मुख्य कार्य होता है। यदि श्रमिक आसानी से व पर्याप्त संख्या में उपलब्ध हैं तो सघन फसल चक्र अपनाया जा सकता है तथा फसल चक्र में नगदी फसलों से समावेशित लाभ लिया जा सकता है।

8. **खेती का प्रकार-** यदि खेती का मुख्य अंग पशु पालन है तो ऐसी जगह चारे वाली फसलें लेनी चाहिए।

9. **किसान की घरेलू आवश्यकताएं -** किसान को अपनी घरेलू आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर फसल चक्र अपनाना चाहिए।

10. **सामाजिक रीति-रिवाज -** फसलों के चुनाव पर सामाजिक रीत–रिवाजों का भी प्रभाव पड़ता है जैसे– प्याज, लहसुन का सेवन न करने वाले किसान उन्हें उगाना नहीं चाहेंगे।

इस प्रकार प्रत्येक राज्य में वहाँ की जलवायु एवं भूमि की परिस्थिति के अनुसार अलग–अलग फसल चक्र अपनाया जा सकता है।

हिंदी भारतीय संस्कृति की आत्मा है: कमलापति त्रिपाठी

बारानी (वर्षा निर्भर) क्षेत्रों में खेती से किसानों की आय बढ़ाने की उन्नत तकनीकें

रामधन घसवा[1], मीना चौधरी[2], रमेश कुमार गियाड़ एवं राजकुमार

भारत में कुल कृषि का लगभग 60—65 प्रतिशत क्षेत्रफल वर्षा आधारित खेती के अन्तर्गत आता है जो देश के पंद्रह राज्यों के लगभग 100 जिलों में फैला हुआ है। बारानी कृषि अधिकतर वर्षा पर निर्भर रहती है। शुष्क तथा अर्धशुष्क क्षेत्रों में बहुत कम वर्षा होती है या इस वर्षा का वितरण असमान होता है। मानसून के अनिश्चित व्यवहार के कारण खेती में उत्पादकता का स्तर अत्यंत निम्न तथा अस्थिर है क्योंकि यहाँ फसलें सूखे के कारण पूरी तरह नष्ट हो जाती हैं या वर्षा के असमान वितरण के कारण फसलों का उत्पादन बहुत कम तथा फसलों से प्राप्त दानों व चारे की गुणवता में कमी पायी जाती है जिसके परिणामस्वरूप इन क्षेत्रों के किसानों की खेती से होने वाली आय पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है। इसके साथ—साथ वर्षा आधारित क्षेत्रों के किसानों को वर्तमान में विभिन्न प्रकार की समस्याओं का सामना भी करना पड़ रहा है। जैसे— मृदा में पोषक तत्वों की कमी, मृदा जैविक कार्बन अंश का कम होना, प्राकृतिक आपदायें, कमजोर मृदा संरचना, जलवायु में हो रहे लगातार परिवर्तन, गुणवत्तापूर्ण बीजों की अनुपलब्धता, बीमारियों और कीटनाशकों की वजह से सालाना फसल घाटा, लागत के अनुसार उपज से पर्याप्त आय ना होना और कृषि लागत के मूल्य में निरतंर बढ़ोत्तरी इत्यादि का उल्लेख किया जा सकता है। देश का इतना बड़ा क्षेत्र सूखाग्रस्त होने के कारण, संसाधन होने के बावजूद भी हमारी खाद्य—सुरक्षा व पोषण सुरक्षा को खतरा महसूस होता है। यदि देश के वर्षा आधारित क्षेत्रों के विकास हेतु उन्नत कृषि तकनीकों, जल संरक्षण व नमी संरक्षण तकनीकों को टिकाऊ तरीके से अपनाया जाए तो फसल उत्पादन के साथ—साथ किसानों की आय को भी बढ़ाया जा सकता है। बारानी क्षेत्रों में सफल फसल उत्पादकता हेतु उन्नत तकनीकों का उल्लेख आगे किया रहा है।

खेत की तैयारी व वर्षा जल का संरक्षण

बारानी क्षेत्रों के खेतों में मृदा नमी को खेत में उचित प्रबंधन व वर्षा जल का संरक्षण कर के निम्नलिखित तकनीकें अपना कर बढ़ाया जा सकता है—

- ❖ बारानी खेती वर्षा पर निर्भर करती है अतः बारानी परिस्थितियों में वर्षा के पानी का अधिकतम संचयन करने के लिए ग्रीष्मकालीन गहरी जुताई करना नितान्त आवश्यक है। अनुसंधानों से भी यह सिद्ध हो चुका है कि ग्रीष्मकालीन जुताई करने से 31.3 प्रतिशत बरसात का पानी खेत में संरक्षित जाता है।
- ❖ संरक्षण जुताई के माध्यम से भी वर्षा के जल का संऱक्षण किया जा सकता है। संरक्षण जुताई में पिछली फसल के लगभग 30 प्रतिशत अवशेषों को मृदा सतह पर छोड़ा जाता है एवं बाकी के फसल अवशेषों को मृदा में दबा दिया जाता है। फसल अवशेष की मौजूदगी से मृदा में वर्षा के जल का प्रवेश अधिक होता है जिससे मृदा में उपलब्ध जल की मात्रा में वृद्धि होती है।
- ❖ उबड़—खाबड़ भूमि में वर्षाजल का वितरण असमान होता है अतः खेत को चारों तरफ से समतल बनाकर रखना चाहिए और वर्षा जल को समान रूप से खेत में फैलने देवें जिससे वर्षा जल संरक्षित हो सके, बहकर नहीं जावे। इस संरक्षित नमी में, लम्बे समय तक वर्षा नहीं होने पर भी, फसल पर सूखे का प्रभाव नहीं होता अथवा कम होता है।
- ❖ ढ़ाल के विपरीत जुताई करें। इस प्रकार जुताई करने से कूड़ में पानी इकट्ठा होगा, भूमि को पानी सोखने के लिए अधिक समय मिलेगा व भूमि का कटाव भी कम होगा।
- ❖ ढ़लान वाले क्षेत्रों में जल अधिग्रहण क्षेत्रों का विकास करना, जिससे मृदा में वर्षा का जल संचय करने तथा भू—जल स्तर बढ़ाने में भी मदद मिले।
- ❖ खेतों में ढ़ाल के विपरीत थोड़ी—थोड़ी दूरी पर डोलियां बनायें एवं वानस्पतिक अवरोध लगायें जिससे वर्षा जल रूक कर भूमि में समा सके।
- ❖ पड़त छोड़े गये खेतों में खरपतवार नष्ट करने एवं जल सोखने की क्षमता बढ़ाने हेतु वर्षा ऋतु में दो—तीन बार जुताई करनी चाहिये। चूंकि अन्तिम वर्षा व बुवाई का अन्तराल लम्बा रहता है इसलिये नमी संरक्षण हेतु पाटा लगायें।

- मृदा जल धारण क्षमता, मृदा उर्वरता व कार्बनिक पदार्थ बढ़ाने के लिए प्रत्येक तीसरे वर्ष वर्षा आरम्भ होने के 15–20 दिन पहले खेत में 5–10 टन प्रति हैक्टयर सड़ी हुई देशी गोबर की खाद, कम्पोस्ट 5–8 टन प्रति हैक्टयर, वर्मी कम्पोस्ट 3–4 टन प्रति हैक्टयर की दर से उपयोग करना चाहिए।
- खेत के निचले क्षेत्रों में तालाब, टैंक निर्माण व सामूहिक भूमि पर सामुदायिक तालाब तकनीक का प्रयोग करके वर्षा के पानी को इकट्ठा करना और उसका फसल की संवेदनशील अवस्थाओं पर सिंचाई करके फसलों को बचाया जा सकता है। इससे उपज एवं आय में बढ़ोतरी होगी।
- बारानी क्षेत्रो में मृदा नमी बढ़ाने के लिए किसानों को अपने खेतो में 50 से 60 सेमी. ऊंची मेड का निर्माण करना चाहिए जिससे वर्षा जल किसान के खेत से बाहर न जा पाए। ऐसा करने से मृदा नमी के साथ–साथ मृदा की उर्वरा शक्ति भी बनी रहेगी।

मृदा नमी संरक्षण

बारानी क्षेत्रों की मृदा नमी नुकसान को कम करने के लिए निम्नलिखित तकनीकें सहायक हो सकती हैं–

- खरपतवार, मृदा नमी को वाष्पोत्सर्जन करके उड़ा देते हैं। अतः बारानी क्षेत्रों में सफल कृषि प्रबंधन के लिए, खरपतवारों से वाष्पोत्सर्जन को रोकने व फसलों को उचित जगह, प्रकाश एवं पोषण प्रदान करने के लिए समुचित खरपतवार नियंत्रण आवश्यक है।
- बारानी क्षेत्रों में वाष्पीकरण द्वारा होने वाले नमी के नुकसान को कम करने के लिए मल्चिंग का उपयोग करें। मल्चिंग का प्रयोग करने से मृदा नमी संरक्षणके साथ साथ अनेक लाभ जैसे मृदा का उचित तापमान बनाये रखना, खरपतवार नियंत्रण, मृदा उर्वरता में बढ़ोत्तरी व मृदा क्षरण में कमी आदि है।
- वर्षा उपरांत जुताई करके पाटा लगाकर मृदा नमी संरक्षण करना चाहिए।
- वाष्पोत्सर्जनरोधी रसायनों जैसे केओलिन 6 प्रतिशत व साइकोसेल 0.03 प्रतिशत का फसल की उचित अवस्था पर छिड़काव करें।
- पत्तियों को मुरझाने से बचाने के लिए पोटेशियम का पर्णीय छिड़काव करना चाहिए तथा पुरानी पत्तियों को निकाल दें।
- मृदा नमी संरक्षण के लिए पॉलीमर्स का प्रयोग करें जैसे–हाइड्रोजेल (2.5–5.0 कि.ग्रा. प्रति हैक्टयर)।
- मध्यकालीन सुधार करें जैसे अन्तःसस्य क्रियाएं, पौधों की संख्या कम करना, जीवन रक्षक सिंचाई करना आदि।

शीघ्र पकने वाली फसलों का चयन

- बारानी खेती हेतु शीघ्र पकने वाली, सूखा सहने की क्षमता वाली एवं अधिक उत्पादन देने वाली फसलों का चयन करना चाहिये। चयन करते समय भूमि की किस्म व सम्भावित वर्षा का ध्यान रखना चाहिये। हल्की एवं रेतीली मिट्टी में बाजरा, ज्वार, मूंग, मोठ, चंवला आदि फसलों का चयन करना चाहिये। मध्यम से भारी मिट्टी में सोयाबीन, अरहर, मक्का, तिल आदि फसलें अच्छी उपज देती हैं।
- खाद्यान्न की तुलना में दलहनी फसलें सूखे को अधिक सहन करती हैं। मक्का, ज्वार, मूंगफली, सोयाबीन उन्हीं क्षेत्रों में लेवें जहां पर्याप्त वर्षा होती हो तथा भूमि की जलधारण क्षमता अधिक हो। औसत वर्षा में भारी भूमि में ज्वार तथा कम वर्षा एवं बलुई भूमि में बाजरा लेवें।

बारानी क्षेत्रों के लिए उपयोगी विभिन्न फसलोंकी उन्नत किस्में

- बाजरा– एच. एच. बी.–67, डब्लू सी. सी.–75, पूसा–383, पूसा–443, पूसा–23, पूसा–612, आर. एच. डी.–30
- ज्वार– सी. एस. एच.–14, सी. एस. एच.–13, सी. एस. एच.–6, एम–35–1, जे. एस.–20, सी. एस. बी.–15
- मक्का– माही कंचन, प्रताप संकर मक्का–1, पी.ई.एच.एम.
- अरहर– पूसा अगेती, शारदा, आई. सी. पी. एल.–87, सी.–11, पूसा–2001, पूसा–992, पी. पी. एच.–4
- मूंग– पूसा बैशाखी, आर. एस.–4, आशा, के.–851, पूसा विशाल, पूसा–672, पूसा रतना, आर.एम.जी.–62, आर.एम.जी. –268, एम. एम.–2
- मोठ– जड़िया, ज्वाला, मरू मोठ–1, मरू बहार, आर. एम. ओ.–40, ए. के. एम. ओ.–35
- उड़द– कृष्णा, टी.–9, बसंत बहार, पंत उड़द–40
- ग्वार– दुर्गापुरा सफेद, एफ. एस.–277, आर. जी. सी.–1002, आर. जी. सी.–1003, आर. जी. सी.–935, नवीन, मरू ग्वार
- तिल– टी.–13, आर. टी.–124, आर. टी.–125, प्रताप, पूर्वा–1
- मूँगफली– गिरनार–2, आर.जी.–425, जे.एल.–24, जी. जी.–2, प्रताप मूँगफली–1, 2, प्रताप मूँगफली राज, टी.जी.–37 ए, डी.एच.–86

समय पर फसलों की बुवाई

- बारानी खेती में समय पर बुवाई करना बहुत आवश्यक है। खरीफ की बुवाई मानसून की प्रथम वर्षा के साथ ही करें इससे बीजों का जमाव अच्छा होगा तथा वर्षा का पूरा लाभ मिलेगा। खरीफ में बुवाई का उपयुक्त समय मध्य जून से जुलाई का प्रथम सप्ताह है। समय पर वर्षा हो तो सबसे पहले खाद्यान्न फसलें और इसके बाद दलहनी तथा तिलहनी फसलों की बुवाई करें।

उचित बीजोपचार

- बारानी क्षेत्रों में उत्पादकता को बनाये रखने तथा बढ़ाने में बीज का महत्वपूर्ण स्थान है। उत्पादकता बढ़ाने के लिए उत्तम बीज का होना अनिवार्य है। उत्तम बीजों के चुनाव के बाद उनका उचित बीजोपचार भी जरूरी है। बीजोपचार से फसलों की उपज बढ़ाने के साथ–साथ कीट रोग प्रकोप से होने वाली हानि को भी 10–15 प्रतिशत तक कम किया जा सकता है। अतः स्वस्थ फसल प्राप्त करने के लिए बीजों का बीजोपचार करना चाहिए।
- बहुत से रोग बीजों से फैलते हैं। अतः रोगजनकों एवं असामान्य परिस्थितियों से बीज को बचाने के लिए बीजोपचार एक महत्वपूर्ण उपाय है।
- अनुसंधान द्वारा पाया गया कि बीजोपचार के लाभ उत्तम पौधों, अच्छी गुणवत्ता, ज्यादा पैदावार और रोगों तथा कीट नियंत्रण में लगी पूंजी पर अच्छी आय के रूप में दिखाई देते हैं।
- बीजोपचार में जैव उर्वरकों का भी प्रयोग करना चाहिए। सभी दलहनी फसलों के बीजों को राईजोबियम कल्चर से तथा अनाज वाली फसलों के बीजों को एजेटोबेक्टर व पीएसबी संर्वध (कल्चर) से उपचारित करें।
- बीजोपचार करते समय सर्वप्रथम फफूंदनाशक, कीटनाशक रसायन और अंत में संर्वध (कल्चर) से उपचारित करना चाहिए।

मिश्रित खेती

- बारानी खेती में एकल फसल पद्धति की बजाय मिश्रित और अंतरवर्ती फसल प्रणाली लाभदायक होती है। अतः विभिन्न फसलों को अलग–अलग कतारों में एक निश्चित अनुपात में बोना चाहिए। उपयुक्त अंतरवर्ती फसलें लेने से मुख्य फसल की उपज पर कोई विपरीत प्रभाव नहीं पड़ता है बल्कि लाभ में वृद्धि होती है और सूखे के कुप्रभाव से भी बचा जा सकता है।
- अंतरवर्ती खेती हेतु एक फसल अधिक ऊँची हो तथा दूसरी कम ऊँचाई वाली, या एक फसल गहरी जड़ वाली तथा दूसरी उथली जड़ों वाली होनी चाहिए। खाद्यान्न फसलों की कतारों के बीच में एक कतार दलहनी फसलों की बोई जा सकती है। विभिन्न वर्ग की फसलें भूमि के अलग–अलग स्तरों से नमी और पोषक तत्व ग्रहण करेंगी। इस प्रकार अंतरवर्ती खेती से भूमि की उर्वरा शक्ति कायम रहती है तथा किसानों को अतिरिक्त आमदनी भी हो जाती है।

खरपतवार नियन्त्रण

- खरपतवार फसल से अधिक तीव्रता से नमी के साथ–साथ पोषक तत्वों का भी शोषण करते हैं इसलिये बारानी क्षेत्रों में फसल की बुवाई के 20 से 25 दिन बाद निराई–गुड़ाई कर खरतपवारों को निकाल दें।
- सूखे की स्थिति में भूमि की ऊपरी परत गुड़ाई के कारण टूट जाने से नमी का वाष्पीकरण कम होता है तथा मृदा में वायु संचार भी बढ़ता है।
- विभिन्न फसलों के लिए आवश्यकतानुसार उपयुक्त समय पर शाकनाशियों का प्रयोग करके भी खरपतवारों का नियंत्रण किया जा सकता है।

उर्वरक प्रबन्धन

- बारानी क्षेत्रों में मृदाऐं कम उर्वरता वाली रहती हैं क्योंकि इन क्षेत्रों में मृदा व जल अपरदन के कारण तथा कम पोषक तत्वों के प्रयोग से मृदा उर्वरता कमजोर रहती है। मृदा की उर्वरा शक्ति बढ़ाने के लिए रासायनिक उर्वरकों के साथ–साथ पोषक तत्वों के कार्बनिक स्त्रोतों का भी प्रयोग करना चाहिये।
- बारानी खेती में जीवांश खाद (गोबर की खाद/कम्पोस्ट) देने से पौधों को आवश्यक पोषक तत्व मिलतें हैं तथा भूमि की उर्वरा शक्ति लम्बे समय तक बनी रहती है। भूमि की भौतिक संरचना में सुधार होता है और जल धारण क्षमता बढ़ती है। सूक्ष्म जीवाणु सक्रिय हो जाते हैं तथा पोषक तत्व पौधों को प्राप्त होने की अवस्था में आ जाते हैं।
- बुवाई के समय उर्वरक देने से पौधों की वृद्धि के साथ–साथ उनकी जड़ों की भी वृद्धि होती है जिससे भूमि की गहरी सतह से भी पौधा नमी ग्रहण कर सकता है, सूखा सहन करने की क्षमता बढ़ती है।
- कार्बनिक खादों में पोषक तत्व घुलनशील अवस्था में रहते हैं एवं इस खाद में मृदा की प्राकृतिक उर्वरा शक्ति को फिर से जीवित करने की समर्थता मौजूद होती है। इसलिए इस खाद को प्रयोग करने के बाद इसका असर लम्बे समय तक बना रहता है।

उचित पौधों की संख्या

- बारानी क्षेत्रों में अंकुरण प्रायः कम होता है। अतः पौधों की समुचित संख्या सर्वाधिक महत्वपूर्ण है क्योंकि इसी पर उत्पादन निर्भर करता है। इस कारण से प्रति हैक्टयर बीज की मात्रा सामान्य से 20 प्रतिशत अधिक रखी जाती है। अंकुरण के बाद पास–पास घने उगे पौधों में से कमजोर/रोगी पौधों एवं खरपतवारों को उखाड़ देना चाहिए अन्यथा पौधों की अधिक संख्या होने से उपलब्ध खेत की नमी को प्रारम्भिक अवस्था में ही वाष्पोत्सर्जन क्रिया द्वारा नष्ट कर देते हैं और पकने की अवस्था पर जब पानी की आवश्यकता होती है तो उस समय पर पानी नहीं मिल पाता है। अतः पौधों की संख्या उपलब्ध खेत में नमी की मात्रा के आधार पर ही रखी जाये।
- बारानी क्षेत्रों में प्रति इकाई क्षेत्र में पौधों की संख्या कम रखनी चाहिए, लेकिन कतारों के बीच की दूरी बढ़ाकर रखनी चाहिए। इससे भूमि में लम्बे समय तक नमी बनी रहती है।

> राष्ट्रीय व्यवहार में हिन्दी को काम में लाना देश की उन्नति के लिए आवश्यक हैः महात्मा गांधी

मृदा स्वास्थ्य पर फसल अवशेष जलाने के हानिकारक प्रभाव एवं उचित प्रबंधन

मीना चौधरी[1], मनोज कुमार जाट[2],रामधन घसवा[3], रमेश कुमार गियाड़ एवं राजकुमार

फसल अवशेष पौधे का वह भाग होता है जो फसल की कटाई और गहाई के बाद खेत में छोड़ दिया जाता है। भूसा, तना, डंठल, पत्ते व छिलके आदि फसल अवशेष कहलाते हैं। गेहूं, धान, सरसों, ग्वार, मूंग, बाजरा, गन्ना व अन्य दूसरी फसलों से काफी मात्रा में फसल अवशेष मिलते हैं। सबसे ज्यादा फसल अवशेष अनाज वाली फसलों में तथा सबसे कम अवशेष दलहनी फसलों से मिलते हैं, फसल अवशेष बहुत ही महत्वपूर्ण प्राकृतिक संसाधन है ये न केवल मृदा कार्बनिक पदार्थ का महत्वपूर्ण स्त्रोत हैं, अपितु मृदा के जैविक, भौतिक एवं रासानियक गुणों में भी वृद्धि करते हैं। पादप द्वारा मृदा से अवशोषित 25 प्रतिशत नत्रजन व फास्फोरस, 50 प्रतिशत गंधक एवं 75 प्रतिशत पोटाश जड़, तना व पत्ती में संग्रिहत रहते हैं अतः फसल अवशेष पादप पोषक तत्वों का भंडार है। यदि इन फसल अवशेषों को पुनः उसी खेत में डाल दिया जाये तो मृदा की उर्वरकता में वृद्धि होगी और फसल उत्पादन लागत में भी कमी आएगी। भारत में प्रतिवर्ष 600–700 मिलियन टन फसल अवशेष उत्पादित होता है जिसका एक चौथाई भाग गेंहू व धान इन दोनों फसलों से प्राप्त होता है परन्तु किसानों को इन फसल अवशेषों का महत्त्व ज्ञात न होने के कारण वे इनका सिर्फ 22 प्रतिशत ही इस्तेमाल करते हैं और बाकि को जला देते हैं। पिछले कुछ वर्षों में एक समस्या मुख्य रूप से देखी जा रही है कि जहां हार्वेस्टर के द्वारा फसलों की कटाई की जाती है उन क्षेत्रों के खेतों में फसल के तने के अधिकतर भाग खेत में खड़े रह जाते हैं तथा वहां के किसान खेत में फसल के अवशेषों को आग लगाकर जला देते हैं। फसलों की कटाई के मौसम में फसल अवशेषों को जलाने तथा इसके मानव स्वास्थ्य पर हो रहे दुष्प्रभाव की खबरें प्राय अखबारों की सुर्खियां बनी रहती हैं। वास्तव में ये एक गंभीर समस्या है जिसके लिए बहुत हद तक खेती की परंपरागत शैली जिम्मेदार है।

पंजाब़, हरियाणा व उत्तर प्रदेश के ज्यादातर गांवों में गेहूं या धान की फसल की कटाई के अंत में पूरे इलाके में धुएं की चादर फैल जाती है। चारों ओर जहर घुलता धुंआ का साम्राज्य होता है। इन स्थानों पर किसान अगली फसल के लिए खेत को तैयार करने से पहले अवांछित पौधों के अवशेषों से छुटकारा पाने के लिए खेत में मौजूद फसल के डंठलो को जलाने का विकल्प चुन रहे हैं। इस पर ज्यादातर किसान कहते हैं कि ये प्रक्रिया एकमात्र व्यवहारिक विकल्प है क्योंकि मशीनों का इस्तेमाल करते हुए वैज्ञानिक तरीके से बची हुई फसल के डंठल या अवशेषों का प्रबंधन करना बहुत महंगा है। इन फसल अवशेषों को जलाने के बजाए किसान उपयोग में ला सकते हैं या फिर फसल अवशेषों को इंधन के ब्लाक बनाकर बोयलर्स को बेचकर अतिरिक्त आय अर्जित की जा सकती है किसान गेहूं के बचे हुए अवशेषों को खेत में ही जुतवाकर उसको खाद के रूप में इस्तेमाल कर सकते हैं इसके अलावा चारे में इस्तेमाल किया जा सकता है। फसलों के अवशेषों का भी कम्पोस्ट बनाकर इस्तेमाल किया जा सकता है। इस समस्या से निपटने के लिए कई निजी कृषि कंपनियां भी काम कर रही हैं। यह निजी कंपनिया किसानों को ऐसे कृषि उपकरण और कृषि इनपुट्स उपलब्ध करा रही हैं जिनसे बचे हुए अवशेष को कम्पोस्ट बनाकर इस्तेमाल किया जा सकता है। कृषि यंत्रों के माध्यम से बचे हुए अवशेषों को खेत में ही काटकर उसको मिट्टी में मिला देने से मिट्टी में जीवांश की मात्रा बढती है। ठीक उसी प्रकार कुछ निजी कंपनियां एवं राष्ट्रीय जैविक खेती केंद्र गाजियाबाद द्वारा तैयार सूक्ष्म जीवों के इस्तेमाल से अवशेष को खेत में ही सडाकर कम्पोस्ट बनाया जा सकता है। इस समस्या से निजात पाने का यही एकमात्र तरीका है कि किसानों को इसके समाधान के विषय में जागरूक किया जाए।

फसल अवशेष जलाने के दुष्प्रभाव

- **फसल अवशेष जलाने से बढ़ रहा ग्लोबल वार्मिंग** अवशेषों के जलने से ग्लोबल वार्मिंग के खतरे को बल मिलता है। फसल अवशेष जलाने से ग्रीन हाउस प्रभाव पैदा करने वाली व अन्य हानिकारक गैसों जैसे मीथेन, कार्बन मोनो आक्साइड, नाइट्रस आक्साइड और नाइट्रोजन के अन्य आक्साइड का उत्सर्जन होता है। इससे पर्यावरण प्रदूषित होता है तथा इसका प्रभाव मानव और पशुओं के अलावा मिट्टी के स्वास्थ्य पर भी पडता है।

- **मृदा पर्यावरण पर प्रभाव** फसल अवशेषों को जलाने से मृदा में उपस्थित सूक्ष्म जीवों की संख्या पर बुरा प्रभाव पड़ता है और फसल अवशेष जलाए जाने से मिट्टी की सर्वाधिक सक्रिय 15 सेंटीमीटर तक की परत में सभी प्रकार के लाभदायक सूक्ष्म जीवियों का नाश हो जाता है। फसल अवशिष्ट जलाने से केचुएं, मकड़ी जैसे मित्र कीटों की संख्या कम हो जाती है। इससे हानिकारक कीटों का प्राकृतिक नियंत्रण नहीं हो पाता, फलस्वरुप महंगे कीटनाशकों का इस्तेमाल करना आवश्यक हो जाता है। इससे खेती की लागत बढ़ जाती है।

- **मृदा के भौतिक गुणों पर प्रभाव** फसल अवशेषों को जलाने के कारण मृदा तापमान में वृद्धि होती है। जिसके फसलस्वरूप मृदा सतह सख्त हो जाती है एवं मृदा की सघनता में वृद्धि होती है। साथ ही मृदा की जलधारण क्षमता में कमी आती है तथा मृदा वायु संचरण पर भी विपरीत प्रभाव पड़ता है।

- **जानवरों के लिए चारे की कमी** फसल अवशेषों को पशुओं के लिए सूखे चारे के रूप में प्रयोग किया जाता है। अतः फसल अवशेषों को जलाने से पशुओं को चारे की कमी का सामना करना पड़ता है।

- **मृदा में उपलब्ध कार्बनिक पदार्थ में कमी** फसल अवशेष जलाने से मृदा में उपस्थित मुख्य पोषक तत्व नाइट्रोजन, फास्फोरस एवं पोटाश की उपलब्धता में कमी आती है।

- **मृदा में उपस्थित पोषक तत्वों की कमी** फसल अवशेषों को जलाने के कारण मिट्टी में पाए जाने वाले पोषक तत्व जैसे नाइट्रोजन, फास्फोरस, पोटाश एवं सल्फर नष्ट हो जाते हैं। इससे मिट्टी की उर्वरा शक्ति कम हो जाती है। कृषि वैज्ञानिकों ने एक अनुमान के अनुसार बताया कि एक टन धान के पैरों को जलाने से 5.5 किलोग्राम नाइट्रोजन, 2.3 किलोग्राम फास्फोरस, 25 किलोग्राम पोटेशियम तथा 1.2 किलोग्राम सल्फर नष्ट हो जाता है।

फसल अवशेषों को मिट्टी में मिलाने के लाभ

यदि किसान उपलब्ध फसल अवशेषों को जलाने की बजाए उनको वापस भूमि में मिला देते हैं तो निम्न लाभ प्राप्त होते हैं–

- **मृदा की उर्वरा शक्ति में सुधार** फसल अवशेषों को मृदा में मिलाने से मृदा के रासानियक गुण जैसे उपलब्ध पोषक तत्वों की मात्रा, मृदा की विद्युत चालकता एवं मृदा पीएच में सुधार होता है तथा फसल को पोषक तत्व अधिक मात्रा में मिलते हैं।

- **मृदा के भौतिक गुणों में सुधार** मृदा में फसल अवशेषों को मिलाने से मृदा की परत में कार्बनिक पदार्थ की मात्रा बढने से मृदा सतह की कठोरता कम होती है तथा जलधारण क्षमता एवं मृदा में वायु–संचरण में वृद्धि होती है। भूमि से पानी के भाप बनकर उड़ने में कमी आती है।

- **फसल उत्पादकता में वृद्धि** भूमि में खरपतवारों के अंकुरण व बढ़वार में कमी होती है। फसल अवशेषों को मृदा में मिलाने पर आने वाली फसलों की उत्पादकता में भी काफी मात्रा में वृद्धि होती है।

- **कार्बनिक पदार्थ की उपलब्धता में वृद्धि** कार्बनिक पदार्थ एकमात्र ऐसा स्रोत है जिसके द्वारा मृदा में उपस्थित विभिन्न पोषक तत्व फसलों को उपलब्ध हो पाते हैं तथा कम्बाइन द्वारा कटाई किए गए प्रक्षेत्र उत्पादित अनाज की तुलना में लगभग 1–29 गुना अन्य फसल अवशेष होते हैं। ये खेत में सड़कर मृदा कार्बनिक पदार्थ की मात्रा में वृद्धि करते हैं। जैविक कार्बन की मात्रा बढ़ती है, पोषक तत्वों की उपलब्धता में वृद्धि फसल अवशेष से बने खाद में पोषक तत्वों का भण्डार होता है। फसल अवशेषों में लगभग सभी आवश्यक पोषक तत्वों के साथ 0–45 प्रतिशत नाइट्रोजन की मात्रा पाई जाती है, जो कि एक प्रमुख पोषक तत्व है।

- **मृदा तापमान** फसल अवशेष भूमि के तापमान को बनाये रखते हैं। गर्मियों में छायांकन प्रभाव के कारण तापमान कम होता है तथा सर्दियों में गर्मी का प्रवाह ऊपर की तरफ कम होता है, जिससे तापमान बढ़ता है।

खेत में फसल अवशेषों का प्रबन्ध

फसल की कटाई के बाद खेत में बचे अवशेष घास–फूंस, पत्तियां व ठूंठ आदि को सड़ाने के लिये किसान को फसल को काटने के पश्चात् 20–25 किग्रा नाइट्रोजन प्रति हैक्टयर की दर से छिड़क कर कल्टीवेटर या रोटावेटर से काटकर मिट्टी में मिला देना चाहिये इस प्रकार अवशेष खेत में विघटित होना प्रारम्भ कर देंगे तथा लगभग एक माह में स्वंय सड़कर आगे बोई जाने वाली फसल को पोषक तत्व प्रदान कर देंगे क्योंकि कटाई के पश्चात दी गई नाइट्रोजन अवशेषों में सड़न की क्रिया को तेज कर देती है। अगर फसल अवशेष खेत में ही पड़े रहे तो फसल बोने पर जब नई फसल के पौधे छोटे रहते हैं तो वे पीले पड जाते हैं क्योंकि उस समय अवशेषों के सडाव में जीवाणु भूमि की नाइट्रोजन का उपयोग कर लेते हैं तथा प्रारम्भ में फसल पीली पड़ जाती है। अतः फसल अवशेषों का प्रबन्ध करना अत्यन्त आवश्यक है तभी हम अपनी जमीन में जीवांश पदार्थ की मात्रा में वृद्धि कर जमीन को खेती योग्य सुरक्षित रख सकते हैं।

'हिंदी का प्रश्न स्वराज्य का प्रश्न है': महात्मा गांधी

हरी खाद मृदा के लिये वरदान

रमेश कुमार गियाड़, रामधन घसवा एवं राजकुमार

वह सहायक फसल जो भूमि के पोषक तत्वों को बढ़ाने एवं जैविक पदार्थों की पूर्ति करने के लिये बोई जाती है, हरी खाद कही जाती है। इस प्रकार की फसल में खेत में हरी अवस्था में ही पलट कर मिट्टी में दबा दी जाती है। यह कार्य फसल में नमी की पर्याप्त मात्रा होने पर ही किया जाता है तथा इस कार्य हेतु मिट्टी पलटाऊ हल का उपयोग किया जाता है। हरी खाद के उपयोग से भूमि में कार्बनिक पदार्थ एवं उपजाऊ क्षमता में वृद्धि होती है।

मृदा उर्वरता व उत्पादकता बढ़ाने हेतु प्रयोग हमारे पूर्वज प्राचीन काल से करते आ रहे हैं परन्तु सघन कृषि पद्धति एवं नकदी फसलों का क्षेत्रफल बढ़ने के कारण हरी खाद के प्रयोग में कमी आई है। बढ़ते ऊर्जा संकट, उर्वरक मूल्यों में वृद्धि व गोबर की खाद, अन्य कम्पोस्ट जैसे कार्बनिक स्रोतों की सीमित आपूर्ति के कारण हरी खाद का महत्व और बढ़ गया है।

खेत में मृदा के लगातार उपयोग से उसमें उपस्थित पोषक तत्व पौधों को बहुत कम मात्रा में प्राप्त होते हैं। इस क्षति की पूर्ति करने के लिए और उपजाऊपन बनाए रखने के लिए हरी खाद एक उत्तम विकल्प माना गया है। ''दलहनी व अदलहनी पौधे के बगैर सड़े–गले पदार्थों को भूमि में दबाना, ताकि मृदा में कार्बनिक पदार्थ की मात्रा बढ़े, इस प्रक्रिया को हरी खाद देना कहते हैं।

दलहनी व अदलहनी फसलों को उनके वानस्पतिक वृद्धि काल में मृदा उर्वरता व उत्पादकता बढ़ाने हेतु जुताई करके मिट्टी में दबाना ही हरी खाद है। ये फसलें अपनी जड़ ग्रन्थियों में उपस्थित सहजीवी जीवाणुओं द्वारा वातावरण में उपस्थित नाईट्रोजन का दोहन कर मृदा में स्थिर करती है।

लाभ

- हरी खाद के प्रयोग से मृदा में जीवांश पदार्थ के साथ–साथ अन्य पादप पोषक तत्व भी प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होता है।
- इससे मृदा संरचना सुधार होता है।
- मृदा भुरभुरी, वायु संचार तथ जलधारण क्षमता में अच्छी, मृदा के पी.एच. मान में सुधार तथा मृदा अपरदन में गिरावट होती है।
- हरी खाद देकर रासायनिक उर्वरकों को प्रतिस्थापित किया जा सकता है।
- इससे मृदा जनित रोगों में कमी आती है।
- हरी खाद देने से मृदा सूक्ष्म जीवों की संख्या व क्रियाशीलता में वृद्धि होती है। जिससे मृदा की उर्वरक तथा उत्पादन क्षमता में वृद्धि होती है।
- पोषक तत्वों की उपलब्धता में वृद्धि।
- मृदा की अधोसतह में सुधार।
- जैविक प्रभाव – नाईट्रोजन का स्थिरीकरण।
- खरपतवार नियंत्रण।
- मृदा संरक्षण में सुधार।

कठिनाईयाँ

- हरी खाद गलने के लिये नमी की ज्यादा मात्रा आवश्यक होती है जिसे पौधे भूमि में सोखते हैं। इससे आगे बोई जाने वाली फसल का सूखने का डर रहता है।
- फलीदार फसल में पानी की मात्रा कम व रेशा ज्यादा होने से अगली बोई जाने वाली फसल में नाईट्रोजन की प्रतिशत मात्रा काफी कम हो जाती है।

कठिनाईयाँ

- हरी खाद गलने के लिये नमी की ज्यादा मात्रा आवश्यक होती है जिसे पौधे भूमि में सोखते हैं। इससे आगे बोई जाने वाली फसल का सूखने का डर रहता है।
- फलीदार फसल में पानी की मात्रा कम व रेशा ज्यादा होने से अगली बोई जाने वाली फसल में नाईट्रोजन की प्रतिशत मात्रा काफी कम हो जाती है।

व्यावहारिक प्रयोग

- वे फसलें काम में लें जो जल्दी फैलकर मृदा को ढ़क लें।
- सभी प्रकार की मृदाओं में वृद्धि कर सकने वाली फसल प्रयोग में लें।
- कम वर्षा वाले क्षेत्रों में प्रयोग ना करें क्योंकि इन क्षेत्रों में नमी संरक्षण मुख्य फसल के लिये अति आवश्यक हैं।
- तनें व जड़ें काफी मात्रा में पानी प्राप्त कर सकें ऐसी फसल का चुनाव करें।
- फलीदार फसल का प्रयोग अच्छा होता है इससे फसलों को नाईट्रोजन भी प्राप्त हो जाती है।

फसलें

- जल्दी वृद्धि व कम समय में बढ़ने वाली फसलें।
- बड़ी व ज्यादा संख्या में पत्तियाँ हों।
- जल व उर्वरक की आवश्यकता कम मात्रा में हो।
- ज्यादा वर्षा वाले क्षेत्रों में सनई व कम वर्षा वाले क्षेत्रों में ढेंचा लगाऐं।
- कम वर्षा व रेतीली भूमि में ग्वार लगाऐं।
- अच्छे जल निकास वाली भूमि में लोबिया उगायें।
- इसके अलावा उड़द, मूंग, ग्वार आदि फसलों को भी काम में लिया जा सकता है।

आदर्श हरी फसल के गुण

- उगाने में न्यूनतम खर्च
- न्यूनतम सिंचाई
- न्यूनतम पादप संरक्षण
- खरपतवार व विपरीत परिस्थिति से जल्दी उभरने की क्षमता
- न्यूनतम समय में अधिकतम वायुमण्डलीय नाइट्रोजन स्थिरीकरण
- कम समय में ज्यादा वृद्धि
- जड़ें ज्यादा गहराई तक जाती हों
- ज्यादा वानस्पतिक वृद्धि
- वानस्पतिक अंग मुलायम हों
- विभिन्न मृदाओं में उत्पादित होने में समर्थ
- बीज सस्ती दरों पर उपलब्ध हों
- फसल कटाई के बाद शीघ्र वृद्धि करती हों
- फसल कई उद्देश्यों जैसे चारा, रेशा, हरी खाद, ज्यादा बीज उत्पादन क्षमता आदि की पूर्ति करती हो

हरी खाद उगाने की विधि व मृदा में पलटने की अवस्था

- बुवाई के समय 20–25 किलो नाइट्रोजन प्रति हेक्टेयर की दर से दलहनी फसलों में तथा 38–48 किलोग्राम नाइट्रोजन प्रति हेक्टेयर की दर से अदलहनी फसलों के साथ बुवाई करें।
- उचित नमी में बीजों को छिड़कवां विधि से बुवाई करके एक जुताई मिट्टी पलटने वाले हल से करके पाटा चला देते हैं।
- उचित सड़ाने हेतु 40–50 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर फॉस्फोरस तथा 20–25 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर पोटाश दिया जाता है।
- बुवाई के 40–60 दिन की अवस्था में या फूल आते समय या सर्वाधिक नमी की अवस्था में मिट्टी पलटने वाले हल से 15–20 सेंटीमीटर की गहराई पर पलट देते हैं।
- समय से पूर्व दबाने पर पूर्ण जीवांश पदार्थ प्राप्त नहीं होते हैं तथा देर से पलटने पर रेशे गलते नहीं है।
- ज्यादा वर्षा व तापमान पर सड़ने गलने की प्रक्रिया जल्दी शुरू हो जाती है।

हरी खाद की फसलों की उत्पादन क्षमता

फसल	हरे पदार्थ की मात्रा (टन/हेक्टेयर)	नाइट्रोजन प्रतिशत	प्राप्त नाइट्रोजन (किग्रा/हेक्टेयर)
सनई	20–30	0.43	86–129
ढ़ेंचा	20–25	0.42	84–105
उड़द	10–12	0.41	41–49
मूंग	8–10	0.48	38–48
ग्वार	20–25	0.34	68–85
लोबिया	15–18	0.49	74–88

हरी खाद देने की विधियाँ

1. **स्थानीय विधि** इसमें फसल को उसी खेत में उगाया जाता है जिसमें उपयोग करना होता है। यह उचित वर्षा अथवा सिंचित क्षेत्रों में अपनाते हैं। इसमें फसल को फूल आने से पूर्व बुवाई से 45 से 60 दिनों बाद मिट्टी में पलट देते हैं।
2. **हरी पत्तियों की हरी खाद** इसमें हरी खाद की फसलों की पत्तियों व कोमल शाखाओं को तोड़कर खेत में फैलाकर मृदा जुताई कर दी जाती है। यह कम वर्षा वाले क्षेत्रों में उपयोगी है।

गुणवत्ता बढ़ाने के उपाय

1. **उपयुक्त फसल का चुनाव** जलवायु व मृदा दशाओं के आधार पर फसल का चुनाव करें। जलमग्न व क्षारीय एवं लवणीय मृदा में ढ़ेंचा तथा सामान्य मृदाओं में सनई व ढ़ेंचा दोनो फसलें बोई जा सकती है।
2. **खेत में पलटने का समय** अधिकतम हरा पदार्थ प्राप्त करने हेतु बुवाई के 6 से 8 सप्ताह बाद मृदा में पलटाई करें। इसके बाद पौधों में रेशे की मात्रा बढ़ जाती है। जिससे अपघटन में ज्यादा समय लगता है।
3. **हरी खाद प्रयोग के बाद अगली फसल की बुवाई** धान की खेती में जलवायु नम व ज्यादा तापमान के कारण अपघटन की क्रिया तेज होती है। अतः खेत में हरी खाद की फसल की आयु 40 से 45 दिन से ज्यादा न हो।
4. **समुचित उर्वरक प्रबन्धन** कम उर्वरक मृदा में नाइट्रोजन धारी उर्वरकों का 15 से 20 किलो प्रति हेक्टेयर उपयोग प्रभावी है। राईजोबियम कल्चर के उपयोग से नाइट्रोजन स्थिरीकरण सहजीवी जीवाणुओं की क्रियाशीलता बढ़ जाती है।

वर्मीकम्पोस्ट बनाने एवं उपयोग करने में किसानों की समस्या एवं समाधान

रतन लाल बैरवा, एल.आर. गुर्जर, एस.सी. शर्मा एवं पवन कुमार माहोर

हरित क्रांति में रासायनिक उर्वरकों का प्रमुख योगदान रहा है। आरम्भ के वर्षों में इन उर्वरकों का उपयोग सन्तुलित मात्रा में किया गया किन्तु बाद में ''अधिक अन्न उपजाओ'' की नीति के तहत इनका अन्धाधुन्ध उपयोग होने लगा। इससे न सिर्फ रासायनिक उर्वरकों के उपयोग में बेतहाशा वृद्धि हुई बल्कि किसानों ने प्राकृतिक खादों का उपयोग बहुत कम कर दिया। नतीजतन भूमि की उर्वरा शक्ति का ह्रास होने लगा और उत्पादन क्षमता घटने लगी।

खेती में पुनः टिकाऊपन और लाभकारी व्यवसाय बनाने के लिए रासायनिक उर्वरकों की जगह जैविक खादों को प्राथमिकता देना अनिवार्य हो गया है। जैविक खादों में केंचुआ खाद एक महत्वपूर्ण आदान है जिसकी सार्थकता को राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर सभी ने स्वीकारा है। अनेक विकसित व विकासशील देशों में वर्मीकम्पोस्ट का उपयोग बड़े पैमाने पर किया जाने लगा है किन्तु भारत में अभी तक न तो इसके महत्व से किसानों को पूर्णतः अवगत कराया जा सका है और न आवश्यकतानुसार व्यापारिक उत्पादन आरम्भ हो पाया है। इसका मुख्य कारण केंचुआ खाद बनाने, भूमि व पौधों पर इसके सार्थक प्रभाव, उपयोग और रखरखाव आदि की सही जानकारी किसानों को उपलब्ध न होना है। केंचुए द्वारा भूमि की उर्वरता, उत्पादकता और भूमि के भौतिक, रासायनिक व जैविक गुणों को लम्बे समय तक अनुकूल बनाये रखने में मदद मिलती है। केंचुओं द्वारा तैयार की गयी खाद वर्मी कम्पोस्ट कहलाती है। वर्मी–कम्पोस्ट में 2.5 से 3.0 प्रतिशत नाईट्रोजन, 1.5–2.0 प्रतिशत फॉस्फोरस एवं 1.5 से 2.0 प्रतिशत पोटाश तत्व पाये जाते हैं, जो कि गोबर की खाद की अपेक्षा 5 गुणा नाईट्रोजन, 8 गुणा फॉस्फोरस, 11 गुणा पोटाश और 3 गुणा मैग्नीशियम तथा अनेक सूक्ष्म तत्व सन्तुलित मात्रा में पाए जाते हैं।

किसानों को वर्मीकम्पोस्ट बनाने में आने वाली समस्याऐं

1. **वर्मीकम्पोस्ट बनाने में जानकारी का अभाव** - अक्सर यह देखा गया है कि कुछ जागरूक किसान वर्मी कम्पोस्ट बनाना चाहते हैं, किन्तु उनके पास वर्मी कम्पोस्ट बनाने की सही विधि का ज्ञान नहीं होता है।
2. **वर्मीकम्पारस्ट बनाने का प्रशिक्षण का अभाव** - प्रशिक्षण के अभाव में किसान वर्मीकम्पोस्ट ठीक प्रकार से नहीं बना पाते हैं। इस कारण किसान वर्मीकम्पोस्ट का खेतों में उपयोग करने से वंचित रह जाते हैं।
3. **वर्मीकम्पोस्ट बनाने की सही विधि का ज्ञान न होना**- किसान अपनी सुविधा अनुसार वर्मीकम्पोस्ट बनाता है और सही विधि का ज्ञान नहीं रखता है, जिस कारण उसका समय एवं धन नष्ट होता है।
4. **वर्मी कम्पोस्ट शैया/बेड** बनाने के लिये भरी गयी सामग्री में 50 प्रतिशत से अधिक नमी बनाये रखने के लिए किसानों को यह पता नहीं है कि कब और कितना पानी डालना है। नमी की मात्र 80 प्रतिशत से अधिक, भी न हो, इसका भी पता नहीं होता है।
5. **किसानों द्वारा वर्मी कम्पोस्ट** बनाने में ताजा गोबर का प्रयोग करने से ढ़ेरी का तापमान बढ़ जाता है और केंचुऐं मर जाते हैं।
6. **वर्मी कम्पोस्ट बनाने की सामग्री की अनुपलब्धता**- वर्मी कम्पोस्ट बनाने के लिये किसानों को केंचुऐं कहां से प्राप्त करने हैं, उसका मूल्य कितना होगा का भी ज्ञान नहीं रहता है। अच्छी किस्म के केंचुऐं हैं या नहीं, इसकी भी जानकारी नहीं रहती है।
7. **वर्मी कम्पोस्ट का शेड बनाने में वित्तीय समस्या** - किसान आर्थिक रूप से इतना सक्षम नहीं है कि वर्मी कम्पोस्ट बनाने की लागत आसानी से वहन कर सकें।

किसानों को वर्मी कम्पोस्ट बनाने में आने वाली समस्याओं का समाधान

1. किसानों को समय–समय पर सम्बन्धित संस्थाओं द्वारा प्रचार–प्रसार के माध्यम से जानकारी देनी चाहिए।
2. जागरूक एवं इच्छुक किसानों को सम्बन्धित संस्थाओं द्वारा प्रशिक्षण देना चाहिए। जिसमें उन्हें यह बताना चाहिए कि वर्मीकम्पोस्ट बनाने की कौनसी विधि किसानों के संसाधनों अनुसार सही है।
3. किसानों को वर्मी कम्पोस्ट बनाने की सामग्री का पहले से प्रबन्ध कर लेना चाहिए तथा केंचुऐं प्राप्त करने के लिए अच्छी केंचुओं विक्रय संस्था से सम्पर्क करना चाहिए। यह भी पता कर लेना चाहिए कि जो केंचुऐं हम खरीद रहें हैं वो सही हैं अथवा नहीं।
4. किसान को वर्मी कम्पोस्ट बनाने के लिये कृषि विभाग द्वारा चलाये जा रहे विभिन्न वित्तीय सहायता प्रदान करने वाली योजनाओं के बारे में जानकारी देकर उन्हे लाभान्वित करना चाहिये।
5. वर्मी कम्पोस्ट बनाते समय गोबर को ठीक प्रकार से सड़ा लेना चाहिए।

किसानों की जानकारी हेतु वर्मीकम्पोस्ट बनाने के निम्न तीन विधियां हैं, जिसमें से किसान अपनी सुविधानुसार विधि अपना सकता हैं–

क. पेड़ विधि

पेड़ विधि पेड़ के चारों ओर गोबर गोलाई में डाला जाता है। हर रोज गोबर को डालकर धीरे–धीरे इस गोल चक्र को पूरा किया जाता है। पहली बार प्रक्रिया शुरू करते समय गोबर के ढेर में थोड़े से केंचुए डाल कर गोबर को जूट के बोरे से ढक दिया जाता है। नमी के लिए बोरे के ऊपर समय–समय पर पानी का छिड़काव किया जाता हैं।

केंचुए डाले गए गोबर को खाते हुए धीरे–धीरे आगे बढ़ते जाते हैं और अपने पीछे वर्मी कम्पोस्ट बना कर छोड़ते जाते हैं।

ख. बेड़ विधि

वर्मी कम्पोस्ट को इकठ्ठा छायादार जगह पर जमीन के ऊपर 2–3 फुट की चौड़ाई और अपनी आवश्यकता के अनुरूप लम्बाई के बेड बनाये जाते हैं। इन बेड़ों का निर्माण गाय–भैंस के गोबर, जानवरों के नीचे बिछाए गए घासफूस–खरपतवार के अवशेष आदि से किया जाता है। ढेर की ऊंचाई लगभग 01 फुट तक रखी जाती है। बेड के ऊपर पुवाल और घास डालकर ढक दिया जाता है। एक बेड का निर्माण हो जाने पर उसके बगल में दूसरे उसके बाद तीसरे बेड बनाते हुए जरूरत के अनुसार कई बेड बनाये जा सकते हैं। शुरुआत में पहले बेड में केंचुए डालने होते हैं जोकि उस बेड में उपस्थित गोबर और जैव–भार को खाद में परिवर्तित कर देते हैं। एक बेड का खाद बन जाने के बाद केंचुए स्वतः ही दूसरे बेड में पहुंच जाते हैं। इसके बाद पहले बेड से वर्मी कम्पोस्ट अलग करके छानकर भंडारित कर लिया जाता है तथा पुनः इस पर गोबर आदि का ढेर लगाकर बेड बना लेते हैं।

ग. टटिया विधि

प्लास्टिक की बोरी या तिरपाल से बांस के माध्यम से टटिया बनाकर वर्मी कम्पोस्ट का निर्माण किया जाता है। इस विधि में प्लास्टिक की बोरियों को खोलकर कई को मिलाकर सिलाई की जाती है।

फिर बांस या लट्ठे के सहारे चारो ओर से सहारा देकर गोलाई में रख कर उसमें गोबर डाल दिया जाता है। गोबर में केंचुए डालकर टटिया विधि से वर्मी कम्पोस्ट का निर्माण किया जाता है। इसमें लागत बहुत कम आती है।

वर्मीकम्पोस्ट उपयोग में आने वाली समस्याऐं

1. किसानों को वर्मी कम्पोस्ट उपलब्धता की कमी– किसानों द्वारा ली जा रही फसलों की आवश्यकतानुसार पर्याप्त मात्रा में वर्मीकम्पोस्ट उपलब्ध नहीं हो पाता है।
2. किसानों को फसलों के अनुसार वर्मी कम्पोस्ट की कितनी मात्रा का उपयोग करना है। अर्थात फसल के अनुसार कितना वर्मीकम्पोस्ट उपयोग करना है का पता नहीं होता है।
3. वर्मीकम्पोस्ट को संग्रह करने की समस्या– किसानों के पास पर्याप्त जगह का अभाव होने के कारण ठीक प्रकार से भण्डारण नहीं हो पाता है जिससे किसानों द्वारा बनाया गया वर्मी कम्पोस्ट लम्बे समय तक सुरक्षित नहीं रह पाता है।
4. किसानों की यह धारणा बनी हुई है कि रासायनिक खाद का उपयोग करने से अधिक उत्पादन प्राप्त होता हैं तथा वर्मी कम्पोस्ट का रासायनिक खाद के स्थान पर प्रयोग करने पर कम उत्पादन मिलेगा।

किसानों के वर्मी कम्पोस्ट के उपयोग में आने वाली समस्याओं का समाधान

1. किसानों को ली जा रही फसल की आवश्यतानुसार फसल बुवाई के पूर्व पर्याप्त मात्रा में वर्मी कम्पोस्ट का संग्रह कर लेना चाहिए।
2. ली जा रही फसलों की वर्मी कम्पोस्ट की आवश्यता की जानकारी पूर्व से प्राप्त कर लेना चाहिए।
3. वर्मी कम्पोस्ट को संग्रहीत करने के दौरान उसके नमीं से बचाव के उपाय करना चाहिए। विभिन्न प्रकार के कीड़े, मकोड़ों एवं संक्रमण से बचाव करना चाहिए।
4. किसानों को अपने मन में जो धारणा बनी हुई है कि रासायनिक खाद के प्रयोग से अधिक उत्पादन मिलता है। इसको दूर करने के लिये कम मात्रा एवं क्षेत्र में वर्मी कम्पोस्ट का प्रयोग कर स्वयं आश्वस्त होना चाहिये।

राजभाषा अधिनियम, 1963 की धारा 3 (3) के तहत प्रावधान के अनुसार निम्नलिखित दस्तावेज़ हिन्दी तथा अंग्रेजी दोनों भाषाओं में जारी किए जाएँगे:-

- संकल्प
- सामान्य आदेश
- नियम
- अधिसूचनाएँ
- प्रशासनिक तथा अन्य प्रतिवेदन
- प्रेस विज्ञप्तियाँ
- संसद के किसी सदन अथवा दोनों सदनों के समक्ष प्रस्तुत किए जाने वाले प्रशासनिक तथा अन्य प्रतिवेदन और सरकारी कागजात
- संविदा
- करार
- अनुज्ञप्ति (लाइसेंस)
- अनुज्ञा-पत्र (परमिट)
- निविदा सूचनाएँ
- निविदा फार्म

कृषि एवं पशुपालन से सम्बन्धित पत्र एवं पत्रिकाऐं

राजकुमार, रंगलाल मीणा, बलवीर सिंह साहू, एल.आर. गुर्जर, रामधन घसवा एवं रमेश कुमार गियाड

भारत एक कृषि प्रधान देश है, जिसकी 70 प्रतिशत आबादी प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से कृषि से जुड़ी है। देश में अनेक एजेन्सियां कृषि से सम्बन्धित कार्यों से जुड़ी हैं। जैसे भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् नई दिल्ली कृषि एवं संबंधित विषयों पर अनुसंधान कार्य करती है। केन्द्र एवं राज्य सरकारों के स्तर पर कृषि मंत्रालय एवं विभाग भी गठित है जो किसानों के लिए विभिन्न प्रकार के कार्य करते हैं एवं योजनाओं को लागू करते हैं। देश के प्रत्येक जिले में एक कृषि विज्ञान केन्द्र मौजूद है जो उस जिले के किसानों से सीधे सम्पर्क में रहते हैं एवं उनकी समस्याओं का निस्तारण करते हैं। इसके अलावा राज्य स्तर पर राज्यों द्वारा जिलों, तहसीलों एवं गाँवों में कृषि विस्तार अधिकारी भी नियुक्त किये गये हैं जो किसानों के बीच कृषि एवं संबंधित विषयों के बारे में जागरूकता हेतु कार्य करते हैं। इस प्रकार देश में एक बहुत बड़ा तंत्र किसानों के हितार्थ जुटा है। देश में मौजूद सभी एजेन्सियां विभिन्न तरीकों एवं माध्यमों से किसानों तक पहुँचती हैं। आज हम कुछ ऐसी एजेन्सियों की बात करेंगे जो नियमित रूप से कृषि एवं संबंधित विषयों पर पत्र एवं पत्रिकाएँ प्रकाशित करती हैं। ये पत्रिकाएँ साप्ताहिक, पखवाड़ा, मासिक अथवा त्रैमासिक अवधि पर प्रकाशित होती हैं। यहाँ ऐसी कुछ मुख्य पत्रिकाओं के बारे में जानकारी दी जा रही है। किसान भाई इन पत्रिकाओं के सदस्य बनकर कृषि एवं पशुपालनसम्बंधित आधुनिकतम जानकारी प्राप्त कर सकते हैं।

क्र. सं.	पत्रिका का नाम	प्रकार	भाषा	प्रकाशन का पता	अवधि	कीमत (रू.)
1.	खेती	पत्रिका	हिन्दी	ज्ञान प्रबंधन निदेशालय, भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, पूसा नई दिल्ली 110012 फोन नं. 011—25843657	मासिक	30 / —
2.	इण्डियन फार्मिंग	पत्रिका	अंग्रेजी	ज्ञान प्रबंधन निदेशालय, भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, पूसा नई दिल्ली 110012 फोन नं. 011—25843657	मासिक	30 / —
3.	फल—फूल	पत्रिका	हिन्दी	ज्ञान प्रबंधन निदेशालय, भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, पूसा नई दिल्ली 110012 फोन नं. 011—25843657	पखवाड़ा	30 / —
4.	फसल क्रांति	पत्रिका	हिन्दी	ए—9, प्रथम तल, पश्चिमी ज्योतिनगर, शहादरा, दिल्ली — 110094 फोन नं. 011—22815345 info@fasalkranti.com	मासिक	600 / — वार्षिक
5.	कृषि जागरण	पत्रिका	हिन्दी	60 / 9, तीसरा तल, यूसूफ सराय बाजार, न्यू दिल्ली — 110016 फोन नं. 01126511845, 26517923 info@krishijagran.com	मासिक	600 / — वार्षिक
6.	कृषि की आवाज	पत्रिका	हिन्दी	एफ—1 / ए, पाण्डव नगर, दिल्ली—110091 फोन नं. 011—22751281 मो. 09810331366 kbc@kisankiawaz.org	मासिक	25 / —
7.	लेस इंडिया	पत्रिका	हिन्दी, अंग्रेजी	ए.एम.ई. फाउण्डेशन, नं . 204, 100 फीट रिंगरोड़, तीसरा फेस, बनाषंकरी, द्वितीय ब्लॉक, बैंगलोर—560085 फोन नं. 08026699512	त्रैमासिक	—

क्र. सं.	पत्रिका का नाम	प्रकार	भाषा	प्रकाशन का पता	अवधि	कीमत (रू.)
8.	एग्रोलुक	पत्रिका	अंग्रेजी	303, तृतीय तल, टावर–बी, आईटी पार्क, सोहना रोड़, सेक्टर–49, गुड़गांव–122001 मो. 9953357009	त्रैमासिक	–
9.	एग्रीकल्चर एंड इंडस्ट्री सर्वे	पत्रिका	अंग्रेजी	सी–2/286, 2–सी क्रोस, 4 मेन डोम लूर, तृतीय फेस, बैंग्लोर–560071 फोन नं. 08041698240	मासिक	800/– वार्षिक
10.	लाईवस्टोक टेक्नोलोजी	पत्रिका	हिन्दी, अंग्रेजी	734, सुभाष कॉलोनी, विक्रम मार्ग, करनाल–132001 (हरियाणा) मो. 9896523333, 9466588099 dinesh@srpublication.com	मासिक	600/– वार्षिक
11.	कृषिका	पत्रिका	हिन्दी	मुजफ्फरपुर – 8420052 फोन – 9570220305	पखवाड़ा या पाक्षिक	–
12.	फार्म एण्ड फूड	पत्रिका	हिन्दी	जयपुर ऑफिस – गीतांजली टावर, 114, व्यास हॉस्पिटल के सामने, अजमेर रोड़ जयपुर 302 006 फोन – 0141–3296580	पखवाड़ा या पाक्षिक	300/– दो साल के लिए
13.	राजस्थानी खेती	पत्रिका	हिन्दी	14, एच.ब्लोक श्री गंगानगर – 335001 राजस्थान फोन – 0154–2470027, 2482027	मासिक	15/–
14.	परती भूमि	पत्रिका	हिन्दी	प्रति भूमि विकास समिति, 14ए, विष्णु दिगम्बर मार्ग, नई दिल्ली फोन – 01123236440, 23235999	त्रैमासिक	25/–
15.	अविपुंज	पत्रिका	हिन्दी	केन्द्रीय भेड़ एवं ऊन अनुसंधान संस्थान, अविकानगर, (वाया–जयपुर, जिला–टोंक राजस्थान 304501)	वार्षिक	–
16.	विश्व कृषि संचार	पत्रिका	हिन्दी	252, शोपिंग सेन्टर, कोटा – 324 001 फोन– 744 –2363066	मासिक	–
17.	एग्रोबायोस	पत्रिका	अंग्रेजी	एग्रोबायोस, इण्डिया, नसराणी सीनेमा के पीछे चोपसाहनी रोड़, जोधपुर 342002	मासिक	75/–
18.	एग्रीकल्चर टुडे	पत्रिका	अंग्रेजी	एग्रीकल्चर टूडे, 306, रोहित हाऊस 3, टोलस्टोय रोड़ नई दिल्ली 110001 फोन – 01123731129, 43595456 फेक्स – 011–23731130	मासिक	800/– वार्षिक
19.	कुरूक्षेत्र	पत्रिका	हिन्दी, अंग्रेजी	बिजनेस मेनेजर, ईस्ट ब्लोक–4, लेवल–7, आर.के. पुरम नई दिल्ली–110066 फोन नं. – 01126100207 pdjucir@gmail.com	मासिक	10/–
20.	खेती दुनिया	पत्रिका	हिन्दी, पंजाबी	के.डी. कॉम्पलेक्स, गोशाला रोड़, शेर ऐ पंजाब बाजार के पास, पटियाला– 147001 फान नं. 01752214575, 5000386 मो. 9876611965 Advtg.mumbai@khetiduniyan.com	साप्ताहिक	400/– वार्षिक

क्र. सं.	पत्रिका का नाम	प्रकार	भाषा	प्रकाशन का पता	अवधि	कीमत (रू.)
21.	कृषक दूत	पत्रिका	हिन्दी	एफ.एम. 16, ब्लॉक सी, मानसरोवर कोम्पलेक्स, होसंगाबाद रोड़, भोपाल – 462026 फोन नं. 07554233824, 2760833 Krishak_doot@yahoo.co.in	साप्ताहिक	500/– वार्षिक
22.	मैं हूं किसान	पत्रिका	हिन्दी, अंग्रेजी	जे–890, सीतापुरा इंडस्ट्रीयल ऐरिया, टोंक रोड़, जयपुर – 302022 M. 9785015005	मासिक	90/–
23.	कृषक भारती	पत्रिका	हिन्दी	ई.एम. – 120, कुशवाह मार्केट के पास, डी.डी. नगर, ग्यालियर, मध्यप्रदेश मो. 9425101132, 9179185002 0751 – 4070802 Email-editorkrb@gmail.com	मासिक	330/– वार्षिक
24.	कृषक आराधना	समाचार पत्र	हिन्दी	ई.एम. – 120, कुशवाह मार्केट के पास, डी.डी. नगर, ग्यालियर, मध्यप्रदेश मो. 9425101132, 9179185002 0751 – 4070802 Email- krishakaradhna@gmail.com	साप्ताहिक	400/– वार्षिक
25.	हरित क्रांति	समाचार पत्र	हिन्दी	ए–23, श्याम कॉलोनी, एयरपोर्ट के पास, टोंक रोड़, जयपुर फोन – 0141–2550858 Haritkranti.ag@rediffmail.com Haritkranti.ag@gmail.com	साप्ताहिक	07/–
26.	पशुधन	समाचार पत्र	अंग्रेजी	5बी, वीरसन्द्रा औद्योगिक क्षेत्र, इलेक्ट्रोनिक सिटी पोस्ट बैगलुरू 560100 कर्नाटक फोन – 402–09999	मासिक	120/– वार्षिक
27.	हलधर टाईम्स	समाचार पत्र	हिन्दी	सी–17 पुरोहित जी का बास, उच्च प्राईमरी स्कूल के पास, बाईस गोदाम, जयपुर – 302 006 फोन – 0141–4021593	दैनिक	–
28.	कृषक जगत	समाचार पत्र	हिन्दी	डी–97, तुलसी मार्ग, बनी पार्क, माधोसिंह सर्कल के पास, जयपुर–302016 फोन नं. – 0141 2282680 मो. 09827049729, 09009231651	साप्ताहिक	500/– वार्षिक
29.	कृषि गोल्डलाईन	समाचार पत्र	हिन्दी	krishigoldline@gmail.com	पाक्षिक	5/– प्रति

संस्थान में राजभाषा कार्यान्वयन संबंधी गतिविधियां

नवीन कुमार यादव

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद के अधीन केन्द्रीय भेड़ एवं ऊन अनुसंधान संस्थान, अविकानगर में दिनांक 16.09.2019 से 30.09.2019 तक हिंदी सप्ताह समारोह का आयोजन किया गया। जिसका शुभारम्भ दिनांक 16.09.2019 को दीप प्रज्ज्वलित कर किया गया। केन्द्रीय भेड़ एवं ऊन अनुसंधान संस्थान, अविकानगर में हिन्दी पखवाड़ा समापन एवं पुरस्कार वितरण समारोह का आयोजन 30 सितम्बर 2019 को आयोजित किया गया। कार्यक्रम की अध्यक्षता संस्थान के निदेशक डॉ. राघवेन्द्र सिंह ने की। कार्यक्रम में मुख्य अतिथि राजकीय महाविद्यालय, मालपुरा के प्राचार्य डॉ. बी.एल. मीणा एवं विशिष्ट अतिथि राजकीय महाविद्यालय, मालपुरा के हिन्दी विभागाध्यक्ष डॉ. सुधीर सोनी उपस्थित थे। इस अवसर पर संस्थान के निदेशक डॉ. राघवेन्द्र सिंह ने कहा कि हिन्दी में वैज्ञानिक साहित्य सृजन एवं उपयोग किये जाने की आवश्यकता है। इस अवसर पर डॉ. सुधीर सोनी ने कहा कि विश्व में लगभग 70 देशों में हिन्दी का बोलचाल तथा कार्यालयी कार्य में प्रयोग किया जाता है। हिन्दी के प्रयोग में सभी तकनीकी कठिनाईयां दूर की जा चुकी है। इस अवसर पर प्राचार्य डॉ. बी.एल. मीणा ने कहा कि हमें भारत के विभिन्न हिंदीत्तर प्रदेशों में आपसी तालमेल से हिन्दी का यथासम्भव प्रचार–प्रसार करना चाहिए।

मुख्य प्रशासनिक अधिकारी श्री सुरेश कुमार ने हिन्दी पखवाड़ा के दौरान आयोजित कार्यक्रम के बारे में विस्तार से बताया जिसमें अंताक्षरी, टिप्पण एवं प्रारूप लेखन, वाद–विवाद, निबंध, श्रुतलेख, हिंदी शोधपत्र एवं पोस्टर प्रतियोगिता, प्रश्न मंच, आशुभाषण, स्वरचित कविता सहित कुल 10 प्रतियोगिताओं का आयोजन किया गया एवं प्रथम, द्वितीय एवं तृतीय पुरस्कार विजेताओं को प्रमाण पत्र वितरित किये गये। इस अवसर पर डॉ. एस.एम.के. नकवी एवं डॉ. आर्तबंधु साहू ने भी अपने विचार व्यक्त किये। धन्यवाद ज्ञापन श्री नवीन कुमार यादव, सहायक निदेशक (राजभाषा) द्वारा किया गया। कार्यक्रम का संचालन डॉ. अर्पिता महापात्र, वैज्ञानिक द्वारा किया गया।

विजयी प्रतिभागियों ने निम्नलिखित प्रतियोगिताओं में प्रथम 1500, द्वितीय 1000, एवं तृतीय 800 रू. की राशि एवं प्रमाण—पत्र प्राप्त किया जिनके नाम निम्न प्रकार है।

(1) दिनांक : 16.09.2019 को आयोजित अंताक्षरी हिंदी प्रतियोगिता।

प्रथम पुरस्कार (समूह)	द्वितीय पुरस्कार (समूह)	तृतीय पुरस्कार (समूह)
श्री छुट्टन लाल मीना	श्री माला राम	श्री लक्ष्मीकांत कश्यप
श्री प्रदीप जाटव	श्री शिवजी राम जाट	श्री राम प्रसाद जाट
श्री भाग चन्द श्रीमाल	श्री पवन	श्री पिल्लू मीना

(2) दिनांक : 17.09.2019 को आयोजित कम्प्यूटर पर यूनिकोड में हिंदी टंकण प्रतियोगिता ।

प्रथम पुरस्कार	द्वितीय पुरस्कार	तृतीय पुरस्कार
श्री संजय शर्मा	श्री राम अवतार शर्मा	श्रीमती रितेश कुमारी

(3) दिनांक : 19.09.2019 को आयोजित प्रश्न मंच प्रतियोगिता।

प्रथम पुरस्कार	द्वितीय पुरस्कार	तृतीय पुरस्कार
श्री पवन कुमार माहौर	श्री नीरज तँवर	श्री चन्द्र प्रकाश टेलर

(4) दिनांक : 20.09.2019 को आयोजित हिंदी टिप्पण एवं प्रारूप लेखन प्रतियोगिता ।

प्रथम पुरस्कार	द्वितीय पुरस्कार	तृतीय पुरस्कार
श्री राजेश	श्रीमती रितेश कुमारी	श्री सी.पी. टेलर

(5) दिनांक : 21.09.2019 को आयोजित वाद—विवाद प्रतियोगिता (पक्ष में)।

प्रथम पुरस्कार	द्वितीय पुरस्कार	तृतीय पुरस्कार
डॉ. विनोद कदम	श्री सी.पी. टेलर	—

दिनांक : 21.09.2019 को आयोजित वाद—विवाद प्रतियोगिता (विपक्ष में)।

प्रथम पुरस्कार	द्वितीय पुरस्कार	तृतीय पुरस्कार
श्री सी.एल. मीना	श्री पिल्लू मीना	—

(6) दिनांक : 23.09.2019 को आयोजित हिंदी निबंध प्रतियोगिता ।

प्रथम पुरस्कार	द्वितीय पुरस्कार	तृतीय पुरस्कार
श्री चन्द्र प्रकाश टेलर	श्री सी.एल. मीना	श्री आर.के. मीना

(7) दिनांक : 24.09.2019 को आयोजित आशु भाषण प्रतियोगिता ।

प्रथम पुरस्कार	द्वितीय पुरस्कार (संयुक्त)	तृतीय पुरस्कार(संयुक्त)
डॉ. विनोद कदम	श्री पिल्लू मीना	श्री सी.पी. टेलर
—	श्री सी.एल. मीणा	श्री राजेश मिश्रा

(8) दिनांक : 26.09.2019 को आयोजित श्रुतलेख प्रतियोगिता ।

प्रथम पुरस्कार	द्वितीय पुरस्कार	तृतीय पुरस्कार
श्रीमती रितेश कुमारी	श्री सुनील सैनी	श्री लक्ष्मीकांत कश्यप

(9.) दिनांक : 27.09.2019 को आयोजित हिन्दी शोध पत्र एवं पोस्टर प्रदर्शन प्रतियोगिता

प्रथम	द्वितीय	तृतीय
डॉ. अरविन्द सोनी	डॉ. एस.के. सांख्यान	डॉ. विनोद कदम
डॉ. वाई.पी. गाडेकर	डॉ. अनूप कुमार सिंह	डॉ. डी.बी. शाक्यवार
डॉ. ए.के. शिंदे	डॉ. बी. कृष्णप्पा	डॉ. एन. षण्मुगम
डॉ. आर.एस. भट्ट	डॉ. राजीव कुमार	डॉ. सिको जोस
	डॉ. आर.एस. भट्ट	डॉ. अजय कुमार
	डॉ. ए. साहू	

(10) दिनांक : 20.09.2018 को आयोजित स्वरचित कविता प्रतियोगिता।

प्रथम	द्वितीय	तृतीय
डॉ. अर्पिता महापात्र	डॉ. वी.के. सक्सेना	श्री मालाराम

मरू क्षेत्रीय परिसर, केन्द्रीय भेड़ एवं अनुसंधान संस्थान बीकानेर में दिनांक 16.09.2019 से 21.09.2019 तक हिन्दी दिवस के उपलक्ष पर हिन्दी सप्ताह का आयोजन किया गया। हिन्दी सप्ताह के अवसर पर हिन्दी सप्ताह के उद्घाटन एवं हिन्दी स्वरचित कविता पाठ, हिन्दी निबंध लेखन, हिन्दी श्रुति लेखन, हिन्दी में सामान्य ज्ञान, हिन्दी टिप्पण लेखन एवं एक दिवसीय हिन्दी में शोध–पत्र (पोस्टर) प्रदर्शन प्रतियोगिताएं आयोजित की गई। हिन्दी सप्ताह के दौरान आयोजित की गयी विभिन्न 6 प्रतियोगिताओं में प्रथम द्वितीय व तृतीय पुरस्कार प्राप्त करने वाले प्रतिभागियों को पुरस्कृत किया गया। उद्घाटन समारोह के अवसर पर मुख्य अतिथि डॉ. आर. पी. सिंह, कुलपति, एस.के.आर.यू बीकानेर, विशिष्ट अतिथि निदेशक डॉ. पी.एल.सरोज केन्द्रीय शुष्क बागवानी संस्थान बीकानेर एवं डॉ. शालीनी मूलचंदानी, हिन्दी विभागाध्यक्ष, डूंगर महाविधालय बीकानेर उपस्थित थे। उद्घाटन समारोह में प्रभागाध्यक्ष डॉ. एच. के. नरूला ने बताया कि कार्यालय के सभी अधिकारी व कर्मचारी स्वतः ही हिन्दी में काम करते हैं साथ ही उन्होने यह भी बताया कि हिन्दी को बढ़ावा देने में मनोरंजन व विज्ञापन का बहुत योगदान है। हिन्दी सप्ताह के समापन समारोह के मुख्य अतिथि डॉ. विष्णु शर्मा, कुलपति, राजुवास बीकानेर के साथ विशिष्ट अतिथि डॉ. एन.डी. यादव प्रभागाध्यक्ष, काजरी बीकानेर तथा विशिष्ट अतिथि डॉ. आर.के.सावल प्रधान वैज्ञानिक रा.उ.अनु. बीकानेर ने वर्तमान में तकनीकी का हिन्दी भाषा में महत्व विषय पर व्याख्यान दिया।

संस्थान के उत्तरी शीतोष्ण क्षेत्रीय केन्द्र गड़सा द्वारा भी दिनांक 14–09–2019 से 28–09–2019 तक हिन्दी पखवाड़ाकाआयोजन किया गया। हिन्दी पखवाड़ा का उद्घाटन मुख्य अतिथि श्री संजीव कुमार शर्मा, सहायक महाप्रबन्धक, राष्ट्रीय कृषि एवं ग्रामीण विकास बैंक, शिमला, हिमाचल प्रदेश ने दिनाँक 14–09–2019 को माँ सरस्वती के समक्ष दीप प्रज्वलन कर किया। इस अवसर पर श्री संजीव कुमार शर्मा एवं विशिष्ट अतिथि श्री बलवन्त ठाकुर, जिला विकास प्रबन्धक राष्ट्रीय कृषि एवं ग्रामीण विकास बैंक, शिमला, हिमाचल प्रदेश ने राजभाषा हिन्दी में काम–काज करने को बोझ एवं बाध्यता न समझते हुए अपनी राष्ट्र भाषा को बढ़ावा देने के लिए प्रोत्साहित किया। इस अवसर पर उन्होंने राजभाषा अधिनियमों की जानकारी देते हुये उनकी अनुपालना का आह्वान किया। कार्यक्रम की अध्यक्षता करते हुए केन्द्र के अध्यक्ष एवं प्राचार्य वैज्ञानिक डा0 ओमहरी चतुर्वेदी ने कहा कि हमारे देश के संविधान में हिन्दी को राजभाषा के रूप में स्वीकार किया गया है। हिन्दी हमारी संस्कृति एवं समाज को सुदृढ बनाकर संगठित करती है। हिन्दी पखवाड़ा के समापन अवसर पर दिनाँक 28–09–2019को मुख्य अतिथि डॉ0 (श्रीमती) रीता सिंह, प्रदेश अध्यक्ष, अखिल भारतीय साहित्य परिशद् ने कहा कि विश्व के लगभग 250 विश्वविद्यालयों में हिन्दी भाषा पढ़ाई जाती है। इसलिए हम भारतीयों को अन्य भाषाओं की तुलना में हिन्दी का अधिक सम्मान करना चाहिए। उन्होंने हिन्दी को संयुक्त राष्ट्र की भाषा में शामिल होने की कामना की। विशिश्ट अतिथि महंत श्री राम शरण दास जी व्याकरणाचार्य, राधा कृष्ण मन्दिर ने राजभाषा हिन्दी को देश का गौरव बताते हुये आह्वान किया कि हम सभी को हिन्दी अपनाकर देश को आगे ले जाना होगा।कार्यक्रम के विशिष्ट अतिथि श्री चन्दशेखर सिंह सेवानिवृत्त प्रधान मुख्य अरण्यपाल ने अपने सम्बोधन में कहा कि हमें दृढ़ सकल्प होकर राज–काज की भाषा में पूरे वर्ष हिन्दी का प्रयोग करना चाहिए। कार्यक्रम की अध्यक्षता करते हुए केन्द्र के अध्यक्ष एवं प्राचार्य वैज्ञानिक डा0 ओमहरी चतुर्वेदी ने कहा कि हमारी पहचान हमारे देश एवं भाषा से की जाती है। उन्होंने कहा कि हमारा अधिकांश पत्र–व्यवहार हिन्दी में होना चाहिए। उक्त हिन्दी पखवाड़े के दौरान विभिन्न प्रतियोगिताओं जैसे प्रश्नमंच, प्रशासनिक शब्दावली, श्रुतिलेख, निबन्ध लेखन इत्यादि का आयोजन किया गया। प्रश्नमंच प्रतियोगिता में डॉ0 के0 एस0 राजारविन्द्र ने प्रथम, श्री बेली राम ने द्वितीय एवं श्री मनोज कुमार शर्मा ने तृतीय स्थान प्राप्त किया। प्रशासनिक एवं तकनीकी शब्दावली में श्री मनोज कुमार शर्मा ने प्रथम, श्री बेली राम ने द्वितीय तथा डॉ के0 एस0 राजारवीन्द ने तृतीय स्थान प्राप्त किया। श्रुतिलेख प्रतियोगिता में श्री रजत चौधरी ने प्रथम, श्री मनोज कुमार शर्मा ने द्वितीय एवं डॉ के0 एस0 राजारवीन्द्र एवं श्री बेली राम ने तृतीय स्थान प्राप्त किया। निबंध प्रतियोगिता में श्री रजत चौधरी ने प्रथम, श्री बेली राम ने द्वितीय एवं श्री हरी कृश्ण ने तृतीय स्थान हासिल किया। कुशल सहायक कर्मचारियों की निबन्ध प्रतियोगिता में श्री सुभाष चन्द प्रथम एवं श्री मूल चन्द द्वितीय रहे जबकि श्रुतिलेख में श्री सुभाष चन्द प्रथम एवं मूल चन्द द्वितीय रहे। अतिथियों ने विभिन्न प्रतियोगिताओं के विजेताओं को पुरस्कृत किया।

उत्तरी शीतोष्ण क्षेत्रीय केन्द्र, गड़सा में राजभाषा के अन्तर्गत कार्यशाला एवं काव्य संगोष्ठी

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली के अन्तर्गत केन्द्रीय भेड़ एवं ऊन अनुसंधान संस्थान के उत्तरी शीतोष्ण क्षेत्रीय केन्द्र, गड़सा में दिनांक 26.06.2019 को राजभाषा कार्यशाला एवं काव्य संगोष्ठी का शुभारम्भ माँ सरस्वती के समक्ष द्वीप प्रज्वलित कर किया गया। इस अवसर पर मुख्य अतिथि श्री चन्द्रबली सिंह, अध्यक्ष नगर राजभाषा कार्यन्वयन समिति (नराकास), कुल्लू मनाली, एवं श्री संजीव कुमार गुलेरिया, उप–प्रबन्धक नगर राजभाषा कार्यन्वयन समिति (नराकास), कुल्लू मनाली, केन्द्र के प्रधान वैज्ञानिक एवं अध्यक्ष डा. ओमहरी चतुर्वेदी ने समस्त वैज्ञानिकों, अधिकारियों एवं कर्मचारियों को हिन्दी के प्रोत्साहन के लिए अपने कार्यालय के कार्य को पूर्ण रूप से हिन्दी में करने का आह्वान किया तथा राजभाषा विभाग के निर्धारित वार्षिक कार्यक्रम के अनुसार सौ प्रतिशत कार्य हिन्दी में करने पर बल दिया। कार्यशाला का आयोजन श्री नरेश कुमार कमल, राजभाषा अधिकारी एवं सदस्य सचिव, नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति, कुल्लू मनाली ने राजभाषा के नियमों के ऊपर प्रस्तुतीकरण प्रस्तुत किया। हिन्दी को प्रोत्साहित करने के लिए एक काव्य संगोष्ठी का आयोजन किया गया। काव्य संगोष्ठी में जिला कुल्लू के स्थानीय कवियों एवं कवियित्रियों ने बहुत ही रोचक कविताए सुनाई। इस अवसर पर श्री नरेश कुमार कमल, श्री चमन लाल, श्री दीपक कुल्लवी, श्रीमती कुमुद शर्मा, श्रीमती इन्दु भारद्वाज, श्रीमती पुनीत पटियाल, श्रीमती सुमन प्रिया सिक्का, श्री भगवान प्रकाश एवं डा. ओमहरी चतुर्वेदी ने अपनी–अपनी कविताओं के माध्यम से श्रोताओं का मनोरंजन किया। इस कार्यक्रम में केन्द्र के समस्त वैज्ञानिकों, अधिकारियों एवं कर्मचारियों ने भाग लिया। केन्द्र के वरिष्ठ वैज्ञानिक डा0 के0 एस0 राजा रवीन्द्र ने कार्यक्रम के समापन अवसर पर समस्त आगुन्तकों का धन्यवाद किया।

दक्षिण क्षेत्रीय अनुसंधान केन्द्र, मन्नवनूर में राजभाषा कार्यशाला का आयोजन

भा कृ अनु प – केन्द्रीय भेड़ एवं ऊन अनुसंधान संस्थान, अविकानगर के दक्षिण क्षेत्रीय अनुसंधान केन्द्र, मन्नवनूर में दिनांक 3 जून 2019 को मुख्यालय की ओर से पहली बार राजभाषा कार्यशाला का आयोजन किया गया। राजभाषा कार्यशाला में मन्नवनूर के आस–पास स्थित विभिन्न केन्द्रीय सरकारी कार्यालयों, उपक्रमों, बोर्डों आदि के 40 से अधिक प्रतिभागियों ने भाग लिया। कार्यशाला का उद्घाटन भा कृ अनु प – केन्द्रीय भेड़ एवं ऊन अनुसंधान संस्थान के निदेशक डा. ए.साहू द्वारा किया गया। श्री मुरारी लाल गुप्ता, उप निदेशक (रा.भा.) भाकृअनु परिषद, नई दिल्ली, विशिष्ट अतिथि के रूप में उपस्थित थे। डॉ. ए.एस. राजेन्दिरान, प्रभारी अधिकारी, दक्षिण क्षेत्रीय अनुसंधान केन्द्र, मन्नावनूर ने अतिथियों तथा प्रतिभागियों का स्वागत किया तथा केन्द्र में जारी गतिविधियों की संक्षिप्त जानकारी दी। श्री मुरारी लाल गुप्ता उप निदेशक (रा.भा.) ने राजभाषा कार्यान्वयन संबंधी अपेक्षित कार्यों के बारे में बताया। श्री नवीन कुमार यादव सहायक निदेशक (रा.भा.) ने संघ सरकार की राजभाषा नीति, नियम, अधिनियम, राजभाषा संबंधी आदेशों के बारे में जानकारी दी। श्री सुरेश कुमार, मुख्य प्रशासनिक अधिकारी ने प्रशासनिक कार्यों में सरल हिन्दी के प्रयोग का सुझाव दिया। डा. ए. साहू, निदेशक ने अध्यक्षीय संबोधन में राजभाषा के कार्यान्वयन को सुनिश्चित करने हेतु यथा आवश्यक प्रयास करने पर बल दिया।

गणेश शंकर विद्यार्थी हिंदी पत्रिका पुरस्कार 2017–18

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद के स्थापना दिवस पर दिनांक 16 जुलाई 2019 को ''गणेश शंकर विद्यार्थी हिंदी पत्रिका पुरस्कार 2017–18'' संस्थान की राजभाषा पत्रिका अविपुंज के लिए प्रदान किया गया। यह पुरस्कार संस्थान के तत्कालीन निदेशक डॉ. ए.साहू एवं श्री जे.पी. मीना, वरिष्ठ तकनीकी अधिकारी (हिंदी अनुवादक) ने प्राप्त किया।

कृषि ज्ञान प्रबंधन इकाई

भा.कृ. अनु. प. - के. भे. ऊ. अनु. सं., अविकानगर 304501

नववर्ष 2020 की हार्दिक शुभकामनाएं

राजपत्रित अवकाश

मकर संक्रांति	जनवरी 15	बुधवार
गणतंत्र दिवस	जनवरी 26	रविवार
होली	मार्च 10	मंगलवार
महावीर जयंती	अप्रैल, 06	सोमवार
गुड फ्राइडे	अप्रैल 10	शुक्रवार
बुद्ध पूर्णिमा	मई 07	गुरुवार
ईद उल फितर *	मई 25	सोमवार
ईद उल जुहा बकरीद *	अगस्त, 01	शनिवार
जन्माष्टमी	अगस्त, 12	बुधवार
स्वतंत्रता दिवस	अगस्त, 15	शनिवार
मोहर्रम	अगस्त 30	रविवार
महात्मा गांधी जयन्ती	अक्टूबर 02	शुक्रवार
दशहरा	अक्टूबर 25	रविवार
ईद-ए-मिलाद *	अक्टूबर 30	शुक्रवार
दीवाली (दीपावली)	नवम्बर 14	शनिवार
गुरु नानक जन्म दिवस	नवम्बर 30	सोमवार
क्रिसमस	दिसम्बर 25	शुक्रवार

* चांद दिखने की स्थिति में

प्रतिबंधित अवकाश

नववर्ष	जनवरी, 01
गुरुगोविन्द सिंह जन्मदिवस	जनवरी, 02
लोहड़ी	जनवरी, 13
पोंगल	जनवरी, 15
बसंत पंचमी	जनवरी, 30
गुरु रविदास जन्मदिवस	फरवरी, 09
स्वामी दयानन्द सरस्वती जयन्ती	फरवरी, 18
शिवाजी जयन्ती	फरवरी, 19
महाशिवरात्रि	फरवरी, 21
होलिका दहन/हजरत अली जन्मदिवस/डोलयात्रा	मार्च, 09
चेटीचंड / गुड़ी पड़वा / चैत्र शुक्लादि / उगादि	मार्च, 25
रामनवमी	अप्रैल, 02
ईस्टर रविवार	अप्रैल, 12
वैशाखी / विशु	अप्रैल, 13
मैसदी/वैशाखाड़ी (बंगाल) / बिहाग बिहू (असम)	अप्रैल, 14
गुरु रवींद्रनाथ जयंती	मई, 08
जमात-उल विदा	मई, 22
रथयात्रा	जून, 23
रक्षाबंधन	अगस्त, 03
पारसी नव वर्ष	अगस्त, 16
विनायक चतुर्थी / गणेश चतुर्थी	अगस्त, 22
ओणम / थिरु ओणम दिवस	अगस्त, 31
दशहरा (महा सप्तमी)	अक्टूबर, 23
दशहरा (महा अष्टमी) / (महा नवमी)	अक्टूबर, 24
विजयादशमी	अक्टूबर, 26
महर्षि वाल्मीकि जन्मदिवस	अक्टूबर, 31
करक चतुर्थी	नवम्बर, 04
गोवर्धन पूजा	नवम्बर, 15
भाई दूज	नवम्बर, 16
छठ पूजा	नवम्बर, 20
गुरु तेगबहादुर शहादत दिवस	नवम्बर, 24
क्रिसमस की पूर्व संध्या	दिसम्बर, 24

जनवरी

रवि		5	12	19	26
सोम		6	13	20	27
मंगल		7	14	21	28
बुध	1	8	15	22	29
गुरु	2	9	16	23	30
शुक्र	3	10	17	24	31
शनि	4	11	18	25	

फरवरी

रवि		2	9	16	23
सोम		3	10	17	24
मंगल		4	11	18	25
बुध		5	12	19	26
गुरु		6	13	20	27
शुक्र		7	14	21	28
शनि	1	8	15	22	29

मार्च

रवि	1	8	15	22	29
सोम	2	9	16	23	30
मंगल	3	10	17	24	31
बुध	4	11	18	25	
गुरु	5	12	19	26	
शुक्र	6	13	20	27	
शनि	7	14	21	28	

अप्रैल

रवि		5	12	19	26
सोम		6	13	20	27
मंगल		7	14	21	28
बुध	1	8	15	22	29
गुरु	2	9	16	23	30
शुक्र	3	10	17	24	
शनि	4	11	18	25	

मई

रवि	31	3	10	17	24
सोम		4	11	18	25
मंगल		5	12	19	26
बुध		6	13	20	27
गुरु		7	14	21	28
शुक्र	1	8	15	22	29
शनि	2	9	16	23	30

जून

रवि		7	14	21	28
सोम	1	8	15	22	29
मंगल	2	9	16	23	30
बुध	3	10	17	24	
गुरु	4	11	18	25	
शुक्र	5	12	19	26	
शनि	6	13	20	27	

जुलाई

रवि		5	12	19	26
सोम		6	13	20	27
मंगल		7	14	21	28
बुध	1	8	15	22	29
गुरु	2	9	16	23	30
शुक्र	3	10	17	24	31
शनि	4	11	18	25	

अगस्त

रवि	30	2	9	16	23
सोम	31	3	10	17	24
मंगल		4	11	18	25
बुध		5	12	19	26
गुरु		6	13	20	27
शुक्र		7	14	21	28
शनि	1	8	15	22	29

सितम्बर

रवि		6	13	20	27
सोम		7	14	21	28
मंगल	1	8	15	22	29
बुध	2	9	16	23	30
गुरु	3	10	17	24	
शुक्र	4	11	18	25	
शनि	5	12	19	26	

अक्टूबर

रवि		4	11	18	25
सोम		5	12	19	26
मंगल		6	13	20	27
बुध		7	14	21	28
गुरु	1	8	15	22	29
शुक्र	2	9	16	23	30
शनि	3	10	17	24	31

नवम्बर

रवि	1	8	15	22	29
सोम	2	9	16	23	30
मंगल	3	10	17	24	
बुध	4	11	18	25	
गुरु	5	12	19	26	
शुक्र	6	13	20	27	
शनि	7	14	21	28	

दिसम्बर

रवि		6	13	20	27
सोम		7	14	21	28
मंगल	1	8	15	22	29
बुध	2	9	16	23	30
गुरु	3	10	17	24	31
शुक्र	4	11	18	25	
शनि	5	12	19	26	

श्री नवीन कुमार यादव
श्री सुनील सैनी

नोट